हिन्दी की प्रथम वानिकी शोध पत्रिका

ISSN 2394 - 8744

वर्ष- 1, अंक - 1

शोधतरु

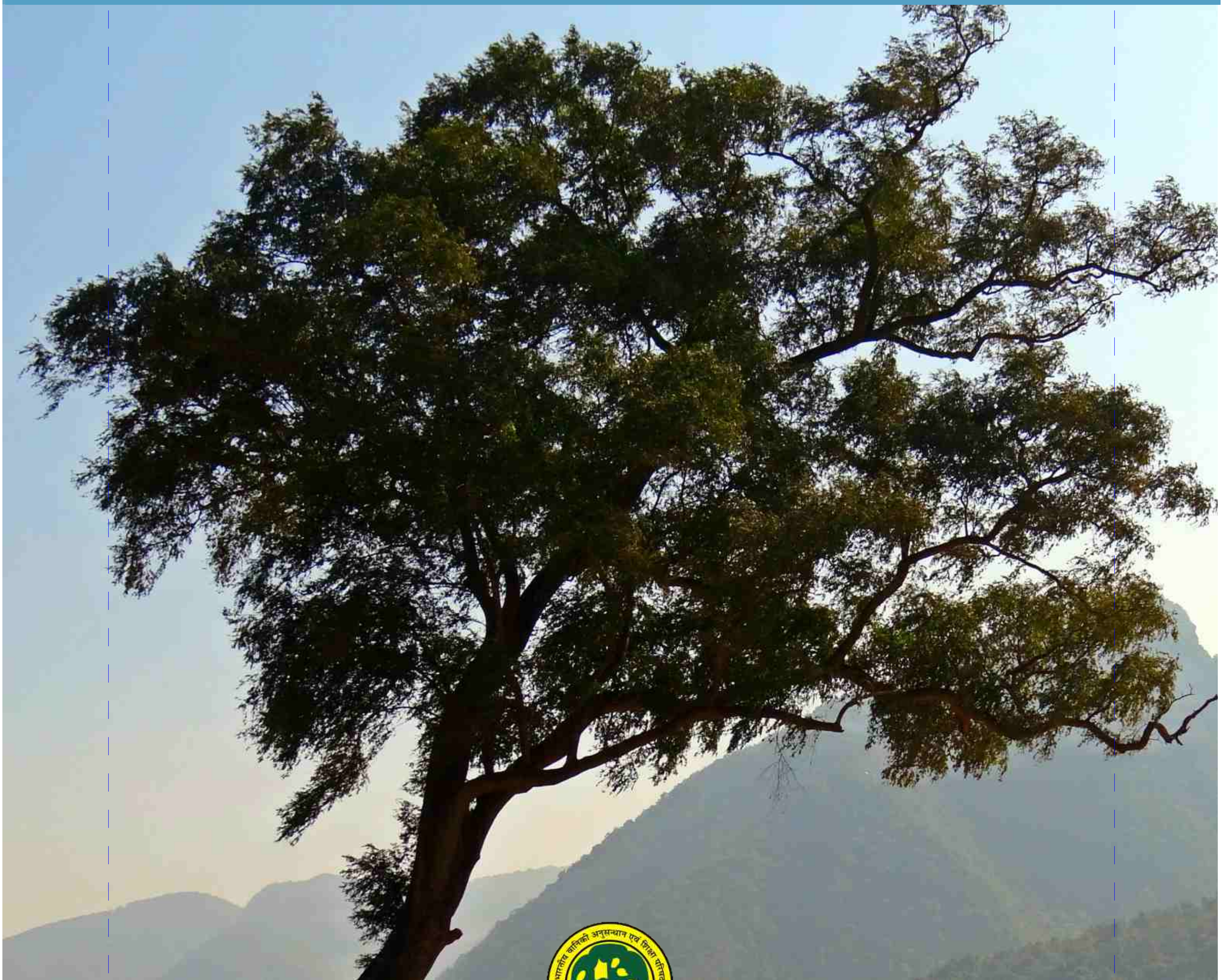

वन उत्पादकता संस्थान, राँची का प्रकाशन

संरक्षक

डॉ. एस. ए. अंसारी

निदेशक, वन उत्पादकता संस्थान, राँची

संपादक

डॉ. संजय सिंह, वैज्ञानिक-ई

सह-संपादक

श्री पंकज सिंह, अनुसंधान अधिकारी

संपादक मण्डल

डॉ. अशोक कुमार पाण्डेय, वैज्ञानिक-एफ

डॉ. शरद तिवारी, वैज्ञानिक-ई

डॉ. अनिमेष सिन्हा, वैज्ञानिक-ई

डॉ. मालविका रे, वैज्ञानिक-डी

डॉ. अरविंद कुमार, वैज्ञानिक-डी

संपादकीय समिति

डॉ. आर. एस. राठी,
प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभारी अधिकारी,
राष्ट्रीय पादक अनुवंशिकी संसाधन ब्यूरो, राँची

श्री पंकज वत्सल,
प्रभारी/संपादक, शोध निदेशालय,
बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची

डॉ. बी. के. झा,
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विस्तार,
बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची

डॉ. राम पाण्डेय,
स्वतंत्र परामर्शदाता (वानिकी),
वन आजीविका एवं प्रसाद केंद्र, त्रिपुरा

श्री अंजेश कुमार,
तकनीकी अधिकारी,
भारतीय प्राकृतिक राल एवं गोंद संस्थान, राँची

डॉ. बी. के. अग्रवाल,
प्रोफेसर, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची

डॉ. धनंजय वासुदेव द्विवेदी,
सहायक प्रोफेसर, राँची विश्वविद्यासलय, राँची

डॉ. पी.के. मिश्रा,
प्रोफेसर, विनोवा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

डॉ. एस. के. उपाध्याय,
सहायक निदेशक, सीटीआरटीआई, राँची

श्री पवन कौशिक,
क्षेत्रीय निदेशक, वन आजीविका एवं प्रसार केंद्र, त्रिपुरा

संपादन सहयोग

श्री आशुतोष कुमार पाण्डेय, वरिष्ठ सहायक

श्रीमती सुजाता रानी मिंज, कनिष्क सहायक

आवरण एवं सज्जा

श्री रविन्द्र राज लाल, अनुसंधान सहायक प्रथम

श्री बंसत कुमार, तकनीकी सहायक

ISSN 2394 - 8744
वर्ष- 1, अंक - 1

शोधतरु

वन उत्पादकता संस्थान
राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 23, लालगुटवा
राँची (झारखण्ड)- 835303

संस्थागत सदस्यता शुल्क : ₹ 1000

व्यक्तिगत सदस्यता शुल्क : ₹ 200

संपर्क :

निदेशक, वन उत्पादकता संस्थान, राष्ट्रीय राजमार्ग 23, लालगुटवा, राँची (झारखण्ड)- 835 303

शोधतरु वानिकी शोध पत्रिका

वर्ष- 1 अंक - 1 मार्च 2015

विषय सूची

प्राक्कथन	v
संरक्षक की कलम से	vi
संपादकीय	viii
वन-सीमावर्ती क्षेत्रों में जन समुदाय के लिए कृषिवानिकी विकास- पवन कुमार कौशिक, प्रवीण वर्मा, शंकर वर्मा Development of agroforestry model in forest fringe areas for local communities- Pawan Kumar Kaushik, Praveen Verma, Shankar Sharma	1
जेट्रोफा कर्कस द्वारा कार्बन संग्रहण की क्षमता- आलोक पाण्डेय, कुमुद दूबे, प्रवीण त्रिपाठी Carbon sequestration capacity of *Jatropha curcas* Alok Pandey, Kumud Dubey, Praveen Tripathi	9
सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र के प्रतिरोधक क्षेत्र में मुख्य वृक्ष जातियाँ- अनिमेष सिन्हा Important tree species in protected area of Sunderban Tiger Reserve- Animesh Sinha	14
वनस्पति जन्य प्राकृतिक जल शोध- पी. के. मिश्रा Natural water purification through plants- P. K. Mishra	20
उच्च गुणवता वाली बाँस रोपण सामग्री हेतु प्रकन्द गुणन वाटिका- राम नारायण पाण्डेय, पवन कुमार कौशिक Rhizome multiplication garden for production of high quality bamboo planting material- Ram Narayan Pandey and Pawan Kumar Kaushik	24
झारखण्ड के कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पादपों का तना कलम विधि द्वारा प्रवर्धन- रवि शंकर प्रसाद और मालविका रे Vegetative propagation through shoot cuttings of some important medicinal plants of Jharkhand- Ravi S. Prasad, Malabika Ray	29
लेखकों के लिए दिशा निर्देश Guide for Authors	33

सत्यमेव जयते

डॉ. अश्विनी कुमार
महानिदेशक एवं
कुलाधिपति व.अ.स. विश्वविद्यालय
Dr. Ashwani Kumar
Director General and Chancellor,
FRI University

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
(आइएसओ 9001:2000 प्रमाणित संस्था)
(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त संस्था)
पो.ओ. न्यू फॉरेस्ट, देहरादून–248 006
Indian Council of Forestry Research and Education
(An ISO 9001:2000 Certified Organisation)
(An autonomous body of Ministry of Environment, Forests and Climate Change, Government of India)
P.O. New Forest, Dehra Dun — 248 006

प्राक्कथन

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून का सतत् प्रयास वानिकी में हो रहे अनुसंधान कार्यों को विभिन्न माध्यमों द्वारा लोगों को जानकारी देना और उनका विस्तार करना रहा है। हिन्दी हमारी राजभाषा होने के साथ ही सहज और सुगमता से समझे जाने वाला माध्यम है। अतः वानिकी के क्षेत्र में हो रहे शोध कार्यों का प्रसार केवल अँग्रेजी माध्यम तक सीमित न रह कर हिन्दी माध्यम में भी हो जिससे कि वनों और उस पर आश्रित लोग भी आसानी से समझ सके और उसका उपयोग अपनी जीविका और आर्थिक स्तर को सुधारने में भी कर सके।

इसी विचार को ध्यान में रखते हुये वन उत्पादकता संस्थान (भारतीय वानिकी शिक्षा परिषद्, देहरादून), राँची जो कि पूर्वी भारत का एक अग्रणी संस्थान है, ने इस ओर एक कदम बढाते हुये "शोधतरु" वानिकी हिन्दी शोध पत्रिका (अर्धवार्षिक) का ऑनलाइन और मुद्रित प्रति का प्रकाशन करना सुनिश्चित किया है। यह पत्रिका वानिकी शोध को हिन्दी में प्रकाशित करने वाली प्रथम शोध पत्रिका है। यह पत्रिका वनसंरक्षण, वन मापिकी, वन कार्यकी, वन आनुवंशिकी, कृषि वानिकी, वनकाष्ठ एवं अकाष्ठ, वन संवर्धन, वन रसायन, औषधीय पादपों, वनजीविकोपार्जन, वन पारिस्थितिकी जैसे विभिन्न विषयों में हो रहे गुणवत्ता युक्त शोध को हिन्दी में प्रकाशित कर उन्हे वानिकी शोध में कार्य कर रहे वैज्ञानिकों, शोधार्थियों, छात्रों साथ ही साथ जनमानस तक सरल और सहज रूप में पहुँचाने का एक उत्तम प्रयास है।

'शोधतरु" का प्रथम अंक एक ऐसा ही प्रयास है जिसमें सभी पाठकों को अपने क्षेत्रों के विषय के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होगी। मै आशा करता हूँ कि पत्रिका का प्रथम अंक पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करेगा और उनके शोध को भी अग्रसर करेगा। मैं यह भी उम्मीद करता हूँ कि पत्रिका का उत्तरोत्तर विकास होता रहेगा।

मैं इस अंक के सुरुचि पूर्ण सम्पादन और कलात्मक प्रस्तुति के लिए डॉ. एस. ए. अंसारी, निदेशक, वन उत्पादकता संस्थान, डॉ. संजय सिंह, संपादक, सभी लेखकों और पत्रिका से जुड़े समस्त कर्मियों को उनके सराहनीय प्रयास के लिए बधाई देता हूँ।

डॉ. अश्विनी कुमार

संरक्षक की कलम से

शोध की संकल्पना

सत्य एवं असत्य शब्दों के मध्य एक द्वन्द है। परन्तु सभ्यता और समाज के विकास एवं उन्नति में केवल सत्य को ही रेखांकित किया जाता है। यक्ष प्रश्न है, कि सत्य में ऐसी क्या विशेषता या श्रेष्ठता है जिसकी वजह से इसे आदिकाल से प्रमुखता दी जाती है। वास्तव में साहित्य में सत्य एवं असत्य मात्र दो विलोमार्थक शब्द हैं। इनका प्रयोग समय एवं स्थान के अनुसार अक्सर बदलता रहता है। कभी–कभी इन शब्दों के अलग–अलग प्रयोगों से बिल्कुल विरोधाभासी भाव उत्पन्न होते हैं, जिससे एक भ्रम की स्थिति भी निर्मित हो जाती है।

परन्तु विज्ञान के संदर्भ में 'सत्य' और इसका मूल्यांकन उपरोक्त विवरण से भिन्न है। विज्ञान समस्त ब्रह्माण्ड को समझने एवं निरूपित करने का एक माध्यम है। जिससे मनुष्य जाति अपने जीवन की निरंतरता दूसरे जीवों पर प्रतियोगात्मक श्रेष्ठता से स्थापित कर सके। इस उद्देश्य में सत्य को जानने एवं समझने की नितांत आवश्यकता है। जैसा कि सर्वविदित है कि विज्ञान में पूर्ण परिभाषित शब्दों का प्रयोग होता है। इसका अर्थ यह है कि विज्ञान में किसी भी शब्द का प्रयोग एक पूर्व निर्धारित चारदीवारी के अन्तर्गत होता है और यह निर्धारण वैज्ञानिकों में सर्वमान्य होता है। इसके अनुरूप विज्ञान में 'सत्य' शब्द का प्रयोग भी एक परिभाषा के अन्तर्गत काल एवं स्थान से परे सर्वमान्य हो। यहाँ पर सर्वमान्यता का तात्पर्य समस्त मनुष्य जाति से है।

विदित हो कि 'सत्य' एक भाववाचक संज्ञा है, जिसके अस्तित्व का आंकलन अपरोक्ष रूप से कुछ स्थूल मापदंड द्वारा ही किया जा सकता है। यह मापदण्ड ही सत्य की परिभाषा का निर्माण करते हैं। इसके अतिरिक्त सत्य की परिभाषा में जीवन का उद्देश्य निरूपित करने से इसकी स्थूलात्मक एवं भावात्मक सर्वमान्यता स्थापित हो जाती है, जिसे वैज्ञानिक सत्य कहा जा सकता है। संक्षेप में जीवन का एकमात्र उद्देश्य ब्रह्माण्ड से सामंजस्य स्थापित करके अपनी निरंतरता बनाए रखना है और मनुष्य का उद्देश्य विज्ञान द्वारा ब्रह्माण्ड से सामंजस्य स्थापित करने के सूत्रों की खोज करना है। यही सूत्र मूलभूत सत्य को इंगित करते हैं।

उपरोक्त विवरण द्वारा सत्य की परिभाषा को प्राप्त किया जा सकता हैं वास्तव में सत्य को कम से कम दो अवयवों द्वारा निरूपित किया जा सकता है। एक मनुष्य द्वारा अपनी इंद्रियों से सत्य की अनुभूति तथा दूसरे सत्य का समरूपक स्थायित्व जो कि समय और स्थान से परे हो। दूसरे शब्दों में सत्य एक ऐसा भाव है जिसकी अनुभूति मनुष्य जाति को सदैव एक जैसी होती है। सत्य अनुभूति और समरूपक स्थायित्व के अभाव में मिथ्या हो जाता है। रात–दिन, वर्ष में अलग–अलग मौसम, परमाणु के विभिन्न अवयव, जन्म–मृत्यु आदि अनुभूति एवं समरूपक स्थायित्व के आधार पर सत्य को इंगित करते हैं। सर्न, जेनेवा द्वारा दिव्य कण (गॉड पारटिकल) की खोज के समस्त प्रयत्न सत्य के इन्हीं दो मापदण्डों पर आधारित हैं। मनुष्य जाति को उपरोक्त परिभाषित सत्य से लाभ यह है कि इससे जीवन की निरंतरता बनाये रखने के लिए उसे ब्रह्माण्ड से सामंजस्य स्थापित करने में सहायता मिलती है। मनुष्य जाति द्वारा अस्थायी अनुभूति प्राप्त होने की दशा में ब्रह्माण्ड से सामंजस्य स्थापित नहीं होगी, जिससे भविष्य में जीवन की निरंतरता बनाये रखने में कठिनाई होगी।

स्थायित्व के दो निहतार्थ हैं। प्रथम समयान्तर में सदैव समरूपता से उपस्थित होना जैसे दिक्स्थान (स्पेस)। द्वितीय किसी विशिष्ट काल एवं स्थान में समरूपता से प्रकट हो जाना जैसे द्रव्य द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आच्छादित करना। इसमें समरूपक स्थायित्व का क्रमिक होना भी सम्मलित है। ग्रहों, उपग्रहों एवं आकाशगंगाओं का एक कक्षा में परिभ्रमण अथवा हैली के पुच्छल तारा द्वारा प्रत्येक 76 वर्ष में पृथ्वी के दर्शन आदि उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। स्थायित्व में निहित समरूपता के कारण इसके किसी अंश की बानगी से सम्पूर्ण समरूपक स्थायित्व को निरूपित किया जा सकता है। इससे मनुष्य जाति को

समरूपक स्थायित्व द्वारा जीवन निरंतरता के लिए भविष्य में तर्कसंगत योजना बनाने में आसानी होती है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर विज्ञान का उद्देश्य ब्रह्माण्ड के उन क्रिया कलापों (सत्य) की खोज है जो समरूपता के साथ स्थाई हों और जिनकी अनुभूति मनुष्य जाति द्वारा बारंबार की जा सके, तथा जिसके प्रत्युत्तर में ब्रह्माण्ड से सामंजस्य स्थापित हो सके। विज्ञान जिस विधि द्वारा उपरोक्त वर्णित सत्य की खोज करता है उसे शोध कहते हैं।

शोध ब्रह्माण्ड के सत्य की खोज के लिए प्रयोग करता है। इसलिए प्रयोग शोध की मूल इकाई है जो ब्रह्माण्ड के क्रिया कलापों की समरूपक स्थाई अनुभूति जाँचने में सक्षम होता है। किसी प्रयोग में सत्य के दोनों अवयव अर्थात अनुभूति एवं स्थायित्व परखने के लिए एक तटस्थ अभिकल्प (डिज़ाइन) का समावेश किया जाता है। प्रयोग की अभिकल्प में अनुभूति को परखने के लिए स्वतंत्र परिवर्तियों (वेरियबल्स) तथा समरूपक स्थायित्व को परखने के लिए प्रतिकृतियों (रेप्लिकेट्स) का तर्कसंगत समावेश होता है। आदिकाल से वैज्ञानिक किसी प्रेक्षण की बारंबारता के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धांत प्रतिपादित करके सत्य को इंगित करते थे। तदुपरान्त इस प्रक्रिया के स्थूल मानकों की खोज करके सांख्यिकी जैसे ज्ञान को संपादित किया गया और बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सांख्यिकी के उपयोग द्वारा विज्ञान की सभी शाखाओं में शोध करने की सटीक एवं सर्वमान्य पद्धति विकसित की गई। अतः अब सत्य की खोज के लिए शोध के मापदंड तय हो चुके हैं जिसमें व्यक्तिगत पूर्वाग्रह की संभावनायें नगण्य हो चुकी हैं। हिंदी में यह अनुसंधान पत्रिका उन सभी शोधपत्रों को स्वीकारेगी जो वैज्ञानिक सत्य की मौलिकता को इंगित करते हैं तथा अपने माध्यम से हिन्दीभाषी मानस में आधुनिक विज्ञान के प्रति अनुराग का भाव जागृत करेगी।

डॉ. शमीम अख़्तर अंसारी

संपादकीय

कला एवं साहित्य की ही भाँति वैज्ञानिक शोध का सामाजिक सरोकार है। शोध की संपूर्णता वास्तविक अर्थों में तभी कही जाएगी जब यह प्रयोगशालाओं की सीमाओं से बाहर निकल जनमानस तक पहुँचे। ऐसा होना बहुत दुस्कर नही है क्योंकि सत्य, शोध और सरलता को अलग करके नही देखा जा सकता, हाँ भाषा का माध्यम महती भूमिका रखता है।

शोध को सरल और सुग्राहय बनाने का कार्य उसी भाषा में संभव है जो भाषा अधिसंख्य जनसंख्या को समझ आए। अपने देश के सन्दर्भ में वानिकी वस्तुतः एक सामाजिक गतिविधि है। इसलिए वानिकी शोध की पहुँच आम जनता तक होनी ही चाहिए। यहाँ यह कहना ग़लत नहीं है कि हिन्दी भाषा इसके लिए सर्वथा उपयुक्त है।

हिन्दी में शोध परिणाम प्रकाशन के संबंध में यह भ्रांति प्रायः रहती है कि ऐसा करना दुरूह एवं अव्यावहारिक है। सौभाग्य से विश्व भर में अनेक देशों में स्थानीय भाषाओं में विशद वैज्ञानिक अनुसंधान बिना किसी बाधा के प्रकाशित हो रहे हैं। तब हिन्दी में ऐसा ना संभव हो पाने का तर्क सुसंगत नही जान पड़ता। जिस भाषा में चलचित्र, कथा–कहानियाँ, व्यापार की बारीक़ियाँ को आसानी से समझा जा सकता है, विज्ञान क्यों नही?

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद के इस संस्थान द्वारा 'शोधतरु' नाम की शोध पत्रिका का प्रकाशन इस दिशा में एक अभिनव प्रयास है। प्रस्तुत पत्रिका को हिन्दी भाषा में अभी प्रकाशित हो रही लोक रूचि पत्रिकाओं के विलग एक गंभीर शोध पत्रिका का स्वरूप प्रदान किया गया है। इसके लिए हम समस्त लेखक गण, संपादक मंडल और विषय विद्वानों का आभार व्यक्त करते हैं। सबकी सहभागिता ही सफलता का मूल मंत्र साबित होगी।

शोधतरु का प्रथम अंक आपको समर्पित करते हुए हर्ष और संशय दोनों बने हुए हैं। इतना ही अनुरोध है– हमारी कोशिश को प्रोत्साहन के साथ साथ सकारात्मक आलोचना प्रदान कर हमारा सतत मार्गदर्शन करते रहें। आशा है आने वाले समय में वानिकी शोध में रत सभी गुणी जनों का सहयोग और प्रेम 'शोध–तरु' को प्राप्त होगा।

डॉ. संजय सिंह

शोधतरु 01(01): 01-08, 2015

वन-सीमावर्ती क्षेत्रों में जन समुदाय के लिए कृषिवानिकी विकास

पवन कुमार कौशिक*, प्रवीण वर्मा[1], शंकर शर्मा[2]
*वन–आधारित आजीविका एवं प्रसार केंद्र, अगरतला (त्रिपुरा)
[1,2]वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट (असम)

सारांश

सहभागी वन प्रबंधन कार्यक्रम के अंतर्गत सहभागिता के दृष्टिकोण द्वारा पारिस्थितिकी सुरक्षा सहित आजीविका विकास का प्रबंधन वन सीमावर्ती जन समुदायों के लिए लाभदायी साबित हुआ है। वनों पर दबाव कम करने के लिए कई अन्य सतत प्रबंधन प्रणाली व्यवहार्य समाधान के रूप में अपनाये गये हैं। वन सीमावर्ती क्षेत्र में कृषिवानिकी के विकास के लिए जोरहट जिला के गिब्बन वन्य जीवन अभयारण्य से सटे मेंलेंग ग्रांट गांव को परियोजना स्थल के रूप में चुना गया। झूम खेती प्रभाव ने भूतजोलकिया ***(कैप्सिकम चाइनेन्सिस)*** को कृषकों के लिए अतिरिक्त आय के साधन हेतु भूतजोलोकिया–सुपारी कृषिवानिकी डिजाइन के रूप में स्थापित किया। प्रस्तुत मॉडल किसानों को एक फसल चक्र में प्रति पौधा 300–400 रूपये तक की अतिरिक्त आमदनी दिलाने में सक्षम है।

मुख्य शब्दः आजीविका विकास, कृषिवानिकी, वन सीमावर्ती ग्राम, सहभागी वन प्रबंधन, भूतजोलकिया, सुपारी।

Development of agroforestry model in forest fringe areas for local communities

Pawan Kumar Kaushik*, Praveen Verma[1], Shankar Sharma[2]
*Forest based livelihood and extension centre, Agartala, Tripura
[1,2]Rain Forest Research Institute, Jorhat, Assam

Abstract

From cooperation point of view, the participatory forest management programme has proved profitable for ecological security *vis-a-vis* better management of generated livelihood for forest fringe communities. Several other perpetual management systems have been adopted for practical solution to ease pressure on forests. Mailang Grant village adjoining Gibbon Wildlife Sanctuary in Jorhat district has been chosen for development of agroforestry system in forest fringe area under the project. For additional income to farmers practicising shifting cultivation, the shifting cultivation division has estabilished and recommended an agroforestry model based on Betel Nut (*Areca catechu*) - Bhutzolikia (*Capsicum chinensis)* crop combination. The recommended model is capable of providing an additional income of ₹ 300-400 per plant in a crop cycle.

Key Words: Livelihood development, Agroforestry, Forest fringe village, Participatory forest management, *Capsicum chinensis*, *Areca catechu.*

Citation: Kaushik P. K., Verma P., Sharma S. 2015. Development of agroforestry model in forest fringe areas for local communities. *Shodhtaru* 1: 1-8.

* e-mail id : pawan.kaushik@gmail.com

प्रस्तावना

जैव–विविधता को बनाए रखने में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका सर्वमान्य है। हमारे वन आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण, वातावरण से कार्बन अधिग्रहण और कई अन्य पर्यावरणीय सेवाएं प्रदान करते हैं। वन उस पर निर्भर लोगों के लिए भोजन और पानी की सुरक्षा के लिए भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वनों पर बढ़ती जनसंख्या के दबाव के परिणामस्वरूप, विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय देशों में, वनस्पति की कमी हो रही है जिसके फलस्वरूप भूमि का क्षरण, विषम जल चक्र और प्राकृतिक पारिस्थितिकी प्रणालियों की उत्पादकता में कमी आ रही है और अंततः गरीबी और बदहाली में भी दिनों–दिन वृद्धि होती जा रही है। वन–सीमावर्ती क्षेत्रों में यह समस्या अधिक तीव्र हो जाती है क्योंकि इन क्षेत्रों में खेती करने के लिए न पर्याप्त भूमि है और न ही रोजगार उपलब्ध कराने के लिए उद्योग है। लोग अभी भी कम उत्पादकता के आदिम कृषि–प्रणाली पर निर्भर हैं और बढ़ते खाद्यान्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वनों पर ज्यादा निर्भरशील होते जा रहे हैं। ये जन–समुदाय नए वन क्षेत्रों में अतिक्रमण करने या झूम खेती जैसे कृषि–प्रणाली चुनने के लिए मजबूर हो रहे हैं जिससे प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से वन दिनों–दिन घटते जा रहे हैं।

अतीत में, वन–सीमावर्ती समुदायों के विकास के लिए जो कदम उठाये गये थे उनमें समग्र विकास के दृष्टिकोण का अभाव रहा। समन्वित योजना के अभाववश वन–सीमावर्ती क्षेत्रों में प्राकृतिक वनस्पतियों की लगातार कमी बहुत ही चिंताजनक है। साथ ही सीमावर्ती समुदायों के सामाजिक–आर्थिक विकास पर्याप्त पैमाने पर नहीं किया जा सका। कृषि भारत की प्रमुख आजीविका है और कई प्रकार की खेती के तरीके गत वर्षों में विकसित हुए हैं। इन खेती के तरीकों में वृक्षों का उपयोग या तो एकल या कृषि फसलों के साथ क्रमिक रूप से रोपण के रूप में शामिल है और यही कृषिवानिकी की परिभाषा है। हालांकि, सामान्यतः कृषिवानिकी प्रणाली का उपयोग वन–सीमावर्ती क्षेत्रों के किसान सार्थकता के साथ नहीं कर पा रहे हैं जिससे भूमि के उपयोग की पूरी क्षमता से वे वंचित रह जाते हैं।

'सहभागी वन प्रबंधन' कार्यक्रम के अंतर्गत सहभागिता के दृष्टिकोण द्वारा पारिस्थितिकी सुरक्षा सहित आजीविका विकास का प्रबंधन वन–सीमावर्ती जन–समुदायों के लिए अवश्य ही लाभदायी साबित हुआ है। वनों पर दबाव कम करने के लिए कई अन्य सतत प्रबंधन प्रणाली व्यवहार्य समाधान के रूप में अपनाये गये हैं। इसकी संयुक्त आर्थिक, पर्यावरण और सामाजिक कार्यों के माध्यम से, कृषिवानिकी वन–सीमावर्ती गांवों के सतत विकास के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

वन–सीमावर्ती समुदायः स्थिति, मुद्दे और संघर्ष

भारत के ग्राम्य जन प्रायः स्थानीय पारिस्थितिकी प्रणालियों से उत्पन्न उत्पादों और सेवाओं पर निर्भरशील रहते हैं। इसलिए पर्यावरण विकास के संदर्भ में, संरक्षित क्षेत्रों के चारों ओर बसे वन–सीमावर्ती गांवों का विकास और प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण और चुनौतीपूर्ण कार्य माना जाता है। इस दिशा में कार्य करते हुए हमें एक ओर यदि जैव–विविधता का संरक्षण करना पड़ता है, तो दूसरी ओर उस जैव–विविधता पर निर्भर स्थानीय जन की आजीविका को प्रोत्साहित करने की चुनौती सामने होती है। जहां वनों को विशेष प्राकृतिक, पारिस्थितिकी या सांस्कृतिक मूल्यों के कारण संरक्षण प्राप्त है, उन संरक्षित क्षेत्रों में संसाधनों के दोहन के लिए विभिन्न सीमाओं / प्रतिबंधों का पालन करना होता है । प्रकृति संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संघ (आईयूसीएन) के अनुसार संरक्षित क्षेत्रों के लिए दिशा निर्देशों में उल्लेखित है कि, "यह एक स्पष्ट रूप से परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र है जो कि कानूनी या अन्य प्रभावी साधनों द्वारा मान्यता प्राप्त, समर्पित और प्रबंधित होते हैं तथा संबद्ध पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाओं और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ प्रकृति के दीर्घकालिक संरक्षण के लिए संकल्पित होते हैं।" आवश्यक होने के बावजूद ऐसी बाध्यता के कारण अतिरिक्त सतर्कता की ज़रुरत होती है और कार्य अधिक दुष्कर हो जाता है।

भारत में लगभग 2,00,000 गांवों में लगभग 35 करोड़ लोग वन–सीमावर्ती क्षेत्रों में रह रहे हैं। केवल वन प्रबंधन में जनसाधारण की भागीदारी द्वारा ही एक राज्य अपने वनों की रक्षा प्रभावी ढंग से कर सकता है। राज्य की भूमिका से इतर दूसरी ओर वन का उपयोग करने वाले ग्रामीण समुदाय होते हैं जो वन विभाग के साथ मिलकर वनों की रक्षा करने और उनके प्रबंधन की जिम्मेदारी वहां कर सकते हैं। देश में वनस्पतियों से आच्छादित भूमि का क्षेत्रफल अनुमानतः 78,340,000 हेक्टेयर है जो देश के सकल भौगोलिक क्षेत्र का 23.84 प्रतिशत हिस्सा है (भारतीय वन सर्वेक्षण, 2009)। इसमें से वन आच्छादन 69,090,000 हेक्टेयर है जो कि देश के भौगोलिक क्षेत्र का 21.02 प्रतिशत है। शेष 2.82 हिस्सा इतर वनस्पतियों से आच्छादन का है दर्ज वन क्षेत्र में वृद्धि के बावजूद जनसंख्या वृद्धि के त्वरित गति के कारण 1950 के दशक के बाद से वन क्षेत्र की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में गिरावट का रुख दिखाई पड़ता है। वन भूमि की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1961 में 0.124 थी जो 2001 में घटकर 0.074 हेक्टेयर हो गयी है। स्पष्ट है कि इस प्रकार वन पर जन के बढ़ते बोझ से वन और जन दोनों का ह्रास हो रहा है जो चिंता का विषय है।

संरक्षित क्षेत्रों पर वन–सीमावर्ती समुदायों की अप्रत्यक्ष निर्भरता के पीछे निहित कारणों में प्रधान कारण इन समुदायों द्वारा एक अतिरिक्त आय की व्यवस्था करना है जिससे कि वे अपने दैनिक व्यय की पूर्ति करते हुए वर्तमान जीवन को बेहतर बना सकें। इस तरह की गतिविधियों में पेड़ों की अवैध कटाई द्वारा लकड़ी आपूर्ति करना, वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए वनोत्पाद और औषधीय जड़ी बूटियों का संग्रह करना, पशु उत्पादों की बिक्री/उपयोग के लिए अवैध शिकार करना जैसे कार्य शामिल किये जा सकते हैं। परिणाम यह कि वन–सीमावर्ती क्षेत्रों में जन की वन पर यह अप्रत्यक्ष निर्भरता हमेशा वन विभाग और वहाँ रहने वाले समुदायों के बीच सतत संघर्ष का कारण बन रहती है।

कृषिवानिकी और पारिस्थितिकी विकास

वन प्रबंधन में समुदाय की भागीदारी की आवश्यकता को आज दुनिया भर के योजनाकारों, नीति निर्माताओं, सामाजिक वैज्ञानिकों और गैर सरकारी संगठनों ने स्वीकार किया है। एक आम सहमति बनी है कि स्थानीय निवासियों को प्रबंध–निर्णय लेने में बड़ी भूमिका निभानी चाहिए जिससे कि समुदाय की भागीदारी की अवधारणा को मजबूत किया जा सके। भारत में वनवासियों की एक बहुत बड़ी जनसंख्या है जो वनों की भूमि पर दावा करती है क्योंकि उनका मानना है कि वनों पर उनका जन्मसिद्ध अधिकार है । ऐसी स्थिति में समस्या अनेक प्रभावी कारकों के साथ बाह्य दबावों के फलस्वरूप समूहगत से बढ़कर किस तरह गंभीर राजनीतिक संकट का कारण बन जाती है यह अब सब जानते हैं। तथापि चूंकि वैसी समस्याएँ प्रत्यक्षतः इस अध्ययन का विषय नहीं हैं, अतः उसपर विचार यहाँ नहीं किया जा रहा है। तदापि यह कहना अनुचित न होगा कि वनों और वनवासियों के सम्बन्ध में शुद्धतः सामाजिक दृष्टि से इस क्षेत्र में व्यक्त विचारों और व्यक्त समस्याओं को भी ध्यान में रखा जाना जरूरी होगा।

पारिस्थितिकीय विकास संबंधी कार्यप्रणाली संरक्षित क्षेत्रों के आसपास रहने वाले स्थानीय समुदायों के सामाजिक कल्याण के साथ–साथ पर्यावरण और वानिकी गतिविधियों को एकीकृत करती है। इसके तहत संरक्षित क्षेत्रों के आसपास के इलाके में स्थानीय समुदायों के लिए पेय जल और सिंचाई सुविधा की व्यवस्था, मिट्टी और नमी संरक्षण, बाड़ लगाने, ग्राम सड़क का काम, स्वास्थ्य शिविरों के आयोजन और रोजगार सृजन के प्रावधान शामिल हैं । संरक्षण के एक अप्रत्यक्ष उपाय के रूप में इन गतिविधियों को मान्यता प्राप्त है और ग्रामीणों का विश्वास जीतने के लिए ये बहुत ही मददगार हैं।

भारत में पारिस्थितिकीय विकास का कार्य वन पर निर्भरता कम करने के लिए एक प्रभावी प्रयास रहा है जो संरक्षित क्षेत्र में संसाधनों के विकास में स्थानीय समुदाय की सहभागिता भी सुनिश्चित करता है। इस निमित्त वन–सीमावर्ती क्षेत्रों में समुदायों की निर्भरता को कम करने के लिए कई आंशिक प्रयास

किए गए थे, लेकिन अब तक वन पर निर्भर लोगों को वैकल्पिक अवसर प्रदान करते हुए वनों में जाने से रोकने के लिए इनमें से कोई भी उपाय पर्याप्त अथवा कारगर सिद्ध नहीं हो सका है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ही कृषिवानिकी को एक व्यवहार्य वैकल्पिक समाधान और प्रगतिशील प्राकृतिक प्रबंधन प्रणाली का रुप दिया जा सकता है। इससे छोटे कृषक अपना सामाजिक–आर्थिक विकास कर सकेंगे और पर्यावरण को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे। कृषिवानिकी के प्रमुख कार्य हैं किसान के लिए स्थिरता लाना, संसाधनों, उत्पादन और आय के बीच स्थिरता लाना और जोखिम को न्यूनतम करना। राष्ट्रीय कृषि नीति (2000) में भी यह उल्लेख है कि कृषि प्रणाली में पारिस्थितिकीय संतुलन, पोषक तत्वों का उत्पादन चक्र, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, और कार्बनिक पदार्थ के अलावा जीव–द्रव्य उत्पादन में वृद्धि को बनाए रखना कृषिवानिकी के लिए भी अपेक्षित है।

कृषिवानिकी मॉडल स्थापित करने के लिए दिशानिर्देश

कृषिवानिकी मॉडल का अभिकल्पन/रूपांकन हमेशा एक जटिल कार्य रहा है जिसमें खेती और वृक्षारोपण की पद्धति उस स्थान–विशेष की पर्यावरणिक स्थितियों और सामाजिक आर्थिक मुद्दों को ध्यान में रख इस प्रकार समायोजित की जाती है कि इसका कोई भी विपरीत प्रभाव न पड़े। जब संरक्षित क्षेत्रों के आसपास के इलाकों के वन–सीमावर्ती समुदायों के लिए किसी एक कृषिवानिकी मॉडल निर्मित किया जाता है तब मॉडल में विभिन्न घटकों के चयन में तय किये जाने वाले मानदंड अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। मानदंड स्थापित करने की प्रक्रिया में वन्य जीवन और वनस्पति विविधता के संरक्षण के साथ–साथ किसानों की समस्याओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। संरक्षण और उत्पादन दोनों ही क्षेत्रों में दीर्घकालिक पारिस्थितिकीय और आजीविकीय सुरक्षा की दृष्टि से विभिन्न घटकों को, विशेषतः फसलों को वास्तविक रूप में सही ढंग से मॉडल में व्यवस्थित किया जाना चाहिए।

वन सीमावर्ती समुदायों के लिए कृषिवानिकी विकास की प्रक्रिया

संरक्षण के साथ–साथ उत्पादन प्राथमिकताओं पर विचार करने के लिए निर्धारित मापदंडों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है:

प्रजातियों का चयन

संरक्षित क्षेत्र के संसाधनों पर दबाव कम करने के लिए चुनी गयी प्रजातियां या वैकल्पिक प्रजाति निम्न प्रकार होनी चाहिए :

क) जलवायु के लिए उपयुक्त, ख) समुदाय धारा अपनाया जाने वाला, ग) वनवासियों और वन्य–जीवों के बीच के संघर्ष को कम से कम करने में सहायक, घ) अन्य सहायक कृषि–वानिकी घटकों के लिए अनुकूल, ड.) आर्थिक रूप से फायदेमंद ।

वन सीमावर्ती क्षेत्र में कृषि से संबंधित समस्याओं की पहचान

- वन्य–जीवों की वजह से फसल की क्षति की घटनाएं
- भूमि की उपलब्धता
- खेती, प्रबंधन एवं मूल्य संवर्द्धन पर जागरूकता का अभाव
- आधारभूत सुविधाओं का अभाव
- दूरस्थ स्थान में उत्पादों की मार्केटिंग

संरक्षित क्षेत्रों पर दबाव कम करने के उपायों की खोज

प्रत्यक्ष निर्भरता (रोजाना दिनचर्या में वन–उत्पादों का उपयोग):

वनवासियों की प्रत्यक्ष निर्भरता कम करने हेतु निम्न उपाय किए जा सकते हैं –

- संरक्षित क्षेत्रों पर दबाव कम करने के लिए जंगल के पास उपयोगी वनस्पति प्रजाति या वैकल्पिक प्रजातियों का रोपण किया जाना चाहिए जो कि लोगों के बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के सक्षम हो और वन सुरक्षित रहें। बुनियादी जरूरतों में खाद्य, ईंधन, चारा, निर्माण सामग्री और अन्य बुनियादी जरूरतें शामिल हैं ।
- जंगल से प्राप्त उत्पादों के उपयोग पर विचार करने के साथ–साथ उनके विकल्प की व्यवस्था करना।

अप्रत्यक्ष निर्भरता (आय/व्यवसाय के लिए वन–उत्पादों का उपयोग):

वनों पर अप्रत्यक्ष निर्भरता कम करने हेतु निम्न उपाय किए जा सकते हैं

- अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए कृषिवानिकी एक पर्यावरणीय अनुकूल विकल्प है।

कृषिवानिकी मॉडल डिजाइन करने के लिए मानदंड

- किसान एवं उसके स्थानीय परिस्थिति के अनुकूल तकनीकों को शामिल करना चाहिए।
- वन्य–जीवों द्वारा हानि पहुंचाने जा सकने वाले अतिसंवेदनशील प्रजाति की फसलें शामिल नहीं करने चाहिए।
- तकनीक और रोपण सामग्री स्थानीय परिस्थितियों और उपलब्ध संसाधनों के अनुकूल होनी चाहिए।
- आसानी से परिवहन किया जा सकने वाला होना चाहिए।
- प्राप्त होने वाले उत्पाद का भंडारण आसान हो।
- उत्पाद अधिक मूल्यवान हो और स्थानीय बाजार में जिसकी मांग हो।
- शीघ्र और नियमित आय देने वाला हो।

उदाहरण

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान द्वारा स्थापित ''प्रदर्शन ग्राम'' में किये गये कृषिवानिकी मॉडल से प्राप्त अनुभव इस क्षेत्र में अच्छा उदाहरण हैं। वन सीमावर्ती क्षेत्र में कृषिवानिकी के विकास के लिए प्रदर्शन क्षेत्रों की स्थापना करने के लिए जोरहट जिला के गिब्बन वन्य जीवन अभयारण्य से सटे मेलेंग ग्रांट गांव को परियोजना स्थल के रूप में चुना गया था। तीन गांवों यथा भोगपुर, मधुपुर और गोविंदपुर के 222 परिवारों के बीच यह किसान सहभागी प्रयोग चलाया गया था। अनुसंधानपूर्वक कृषिवानिकी मॉडलों की स्थापना से जैव–विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

वानस्पतिक संसाधन बचाने के लक्ष्य और निहित उद्देश्यों को निम्नलिखित तरह से प्राप्त किया जा सकता है :

- गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य के आसपास बसे लोगों को व्यवहार्य कृषिवानिकी मॉडलों के माध्यम से स्थायी आजीविका प्रदान करके ।
- अनुसंधान के माध्यम से खेती धारा विज्ञान और समाज दोनों को लाभ पहुँचाकर।
- जैव विविधता संरक्षण के लिए विभिन्न हितधारकों के बीच जागरूकता पैदा करके।

इसकी सफलता के उदारहरण के रूप में भूतजोलोकिया आधारित कृषि मॉडल को देखा जा सकता है जिसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है –

भूतजोलोकिया–सुपारी कृषिवानिकी मॉडल

ब्रह्मपुत्र घाटी में पाई जाने वाली भूत–जोलोकिया ***(कैप्सिकम चाईनेसिस*** जैक.) दुनिया की सबसे तीखी मिर्चो में त्रिनिनाद स्कोर्पियन के साथ संयुक्त रूप से प्रथम स्थान पर है (चित्र 1)। पूर्वोत्तर भारत में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता हैं जैसे 'घोस्ट पिपर चिली', 'नागा रेड चिली' 'नागा वाइपर' इत्यादि। यह मिर्च आनुवांशिक रूप से ***कैप्सिकम फ्रूटीसेंस*** के जीन्सों का ***कैप्सिकम चाइनेन्सिस*** में समावेश है। यह मिर्च अपनी विशेष सुगंध, औषधि और कीटनाशी गुणों के कारण सारी दुनिया भर में प्रसिद्ध है। यह यहां की पारंपरिक औषधियों में शामिल है जैसे सिर दर्द, पेट की बीमारियों में, गठिया निवारण आदि में। निकट भविष्य में यह दंगे नियंत्रण में भी प्रमुख भूमिका निभाएगी क्योंकि इसके पाउडर में बहुत जलन भरी तीव्रता है और पर्यावरण की दृष्टि से यह रासायनिक अश्रू गैस से उत्तम है।

चित्र 1: भूतजोलोकिया पादप (ऊपर), उत्पाद और परिपक्व फल (नीचे बाँये से दाँये)

पूर्वोत्तर भारत में यह असम, नागालैंड एवं मणिपुर, मिज़ोरम में व्यापक रूप से उगाई जाती हैं एवं विभिन्न जलवायु में उगने की वजह से इनका रंग, रूप, माप यहाँ तक तीखेपन में भी अंतर होता हैं। इनका आकार बहुत ही खुरदरा और रंग चटक लाल, चॉकलेट से लेकर संतरे की तरह, वजन 5 से लेकर 12 ग्राम तक होता है। अपनी गुणकारी विशेषताओं की वजह से यह मिर्च बाज़ार मूल्य में सभी मिर्चों में सबसे अधिक मूल्यवान होती है।

जोरहाट स्थित वर्षा वन अनुसंधान संस्थान के झूम खेती प्रभाग ने भूतजोलकिया को कृषकों के लिए अतिरिक्त आय के साधन हेतु भूतजोलोकिया– सुपारी कृषिवानिकी डिजाइन के रूप में स्थापित किया है । सुपारी असम के ग्रामीण घरों के बागीचे का प्रमुख पेड़ है शायद ही कोई ऐसा घर हो जहाँ पर इसकी खेती ना की जाती हो। पाल्मी परिवार के उष्णकटिबंधीय जलवायु अनुकूलित यह पौधे बहुत ही कम जगह में अपनी वृद्धि करते है। एक पूर्ण वयस्क पौधा 7–8 वर्षो में सुपारी का उत्पादन शुरू कर देता है। सुपारी बागान बड़े हो या फिर बहुत छोटे, उनके दो पौधो के बीच का अंतर भूतजोलोकिया–सुपारी कृषिवानिकी के मापदंडो के लिए आदर्श होता है। सुपारी के दो पौधों के बीच तकरीबन 1 से 1.5 मीटर तक की जगह होती है एवं इनके बीच दो भूतजोलकिया के पौधो को आसानी से रोपा जा सकता है। इस तरह एक सुपारी बागान में इतनी सीमित, बहुत छोटी सी जगह में भी कम से कम 20–25 भूतजोलोकिया मिर्च के पौधों की खेती की जा सकती है। भूतजोलोकिया–सुपारी कृषिवानिकी शुरू करने से पहले भूतजोलोकिया के आदर्श पौधों का होना बहुत जरूरी है।

भूतजोलकिया का नर्सरी प्रबंधन एक जटिल कार्य है, इसका पहला कारण है मृदा–जनित अनेक प्रकार के कवक एवं जीवाणु जनित रोग एवं बीजों की अंकुरण क्षमता। परिपक्व बीज बहुत जल्दी ही अपनी अंकुरण क्षमता खोने लगते है। इसलिए इनके बीजों को पकने के तुरंत बाद फलों से बाहर निकाल कर धूप में सुखा लिया जाता है। अब खुली जगह मे समतल जमीन से 15–20 सेंटीमीटर मिट्टी को ऊपर उठाकर एक क्यारी तैयार करते है और 0.01 ग्राम प्रति लीटर बैवीस्टिन (कवकनाशी) का घोल तैयार कर क्यारी में अच्छी तरह से मिला देते है, फिर 3–4 दिन के बाद बीजों को बो देते है। इनमें समय– समय पर पानी का ह्ल्का सा छिडकाव करना होता है। कुछ दिनों बाद अंकुरण शुरु हो जाता है। फिर दो–तीन सप्ताहों के भीतर इन्हें क्यारी से निकाल कर ऐसे पॉलीबैग में स्थानान्तरित कर देते है जिसमें 1:1:1: वर्मीकंपोस्टः रेतःमृदा का मिश्रण भरा होता है।

पौधों का रोपण अप्रैल–मई माह में सुपारी के बागानों में कर दिया जाता है। वहाँ इनकी क्यारियां सतह से कुछ ऊपर बनायी जाती है जिससे बारिश का पानी इनकी जड़ों में एकत्रित न रह सके। पौधों में बीमारी के बचाव के लिए जरूरी है कि ताजे गोबर का इस्तेमाल खाद के रूप में न किया जाए। निमैटोड इत्यादि के आक्रमण से पौधों की रक्षा के लिए इसका ध्यान रखा जाना आवश्यक है। पौधे 2.5–3 महीनों में परिपक्व हो कर उत्पादन हेतु मिर्चों का निर्माण शुरू कर देते है। एक सामान्य पौधे में एक सप्ताह में 200–250 ग्राम तक मिर्चे लगती है और यह पौधा 4 –5 (6) माह तक मिर्चों का उत्पादन करता रहता है। बाद के महीनों मे उत्पादन में गिरावट आ जाती हैं। जून से अक्टूबर तक इसका बाज़ार मूल्य 160–200 रुपये प्रति किलो ग्राम रहता है जो बाद मे उत्पादन कम होने के समय 250 से 350 रुपये प्रति किलो तक पहुँच जाता है। इस प्रकार एक पौधे से एक फसल चक्र में कम से कम 300–400 रुपये तक की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती हैं। भूतजोलोकिया उत्पादन के विभिन्न चरण तथा कृषिवानिकी का विस्तारण चित्र–2 में दिखाये गये हैं।

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान के झूम खेती प्रभाग ने जोरहट जिले के अंतर्गत गिब्बन वन्य अभ्यारण

की सीमा से लगे गोबिंदपुर, मधूपुर, एवं भोगपुर ग्रामों में इस मॉडल की सफलता पूर्वक स्थापना की है एवं ग्रामीणो के लिए अतरिक्त आय के स्रोतों का सृजन किया है।

चित्र 2 : भूतजोलोकिया नर्सरी के विभिन्न चरण, मिर्च परिपक्वता के चरण और कृषक खेत में भूतजोलकिया– सुपारी कृषिवानिकी मॉडल का विस्तारण

संदर्भ

इंडिया फोरेस्ट सर्वे आफ़ इंडिया रिपोर्ट 2009. भारतीय वन सर्वेक्षण, देहरादून.

राष्ट्रीय कृषि नीति 2000. कृषि विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.

मूल शोधपत्र

शोधतरु 01(01): 09-13, 2015

जेट्रोफा कर्कस द्वारा कार्बन संग्रहण की क्षमता

आलोक पाण्डेय, कुमुद दूबे, प्रवीण त्रिपाठी
सामाजिक वानिकी एवं पारि–पुर्नस्थापन केन्द्र
3/1लाजपत राय रोड, इलाहाबाद – 211002, उ.प्र.

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में ***जेट्रोफा कर्कस*** द्वारा कार्बन संग्रहण की क्षमता का अध्ययन किया गया है। अध्ययन क्षेत्र पडिला, इलाहाबाद में स्थित है। शाखा भाग तथा जड़ के जीवभार हेतु 3 वर्ष के चार पौधे चयनित किये गये। प्रत्येक पौधे की शाखाओं तथा जडों को काटकर तौला गया। तीन वर्ष के पौधे का शुष्क जीवभार का अध्ययन किया गया। भूमि के नीचे का शुष्क जीवभार 0.633किग्रा0 तथा भूमि के ऊपर का कुल शुष्क जीवभार 13.0किग्रा0 पाया गया। ***जेट्रोफा कर्कस*** द्वारा कार्बन संग्रहण की कुल क्षमता 13.633 किग्रा0/3 वर्ष प्राप्त हुआ। ***जेट्रोफा कर्कस*** के प्रति पौध का प्रति वर्ष कार्बन संग्रहण 4.544 किग्रा0/वर्ष (जीवभार के संदर्भ में) प्राप्त हुआ।

मुख्य शब्द: कार्बन संग्रहण, बायोईंधन, रतनजोत, शुष्क जीवभार

Carbon sequestration capacity of *Jatropha curcas*

Alok Pandey*, Kumud Dubey, Praveen Tripathi
Centre for Social Forestry and Eco-Rehabilitation (CSFER), Allahabad

Abstract

The research paper reports an investigation based on carbon sequestration capacity of *Jatropha curcas*, which was conducted in Padila, Allahabad. The plants of three years age were chosen for biomass of shoots and roots; which were cut and weighed. Total dry biomass of three year old plants was also studied. The values for dry biomass were 0.633 kg for underground (root) part and 13.0 kg for above ground (shoot) part. *Jatropha curcas* sequestered carbon to the tune of 13.633 kg/3 year, i.e. 4.544 kg/ year in terms of biomass.

Key Words: Carbon Sequestration, Bio fuel, Ratanjot, Dry Biomass.

Citation: Pandey A., Dubey K., Tripathi P. 2015. Carbon sequestration capacity of *Jatropha curcas*. *Shodhtaru* 1: 9-13.

प्रस्तावना

जेट्रोफा कर्कस को प्रायः रतनजोत, बायो डीजल पौधे, चन्द्रजोत, जंगली अरण्य इत्यादि नामों से जाना जाता है। यह यूफोर्बोएसी कुल का पौधा है, जेट्रोफा एक बहुवर्षीय, सदाहरित छोटे आकार का झाड़ीनुमा वृक्ष है। इसकी लम्बाई 3 – 4 मीटर तक होती है। तना चिकना, मुलायम, काष्ठीय एवं शाखित होता है, परन्तु नोड व इन्टरनोड नहीं होता है। इसके तनों तथा पत्तों को तोडने पर सफेद रंग का दूध (लेटेक्स) निकलता है। यह पौधा शुष्क जलवायु हेतु भी अति उपयुक्त है। यह हर तरह की भूमि में उगाया जा सकता है जैसे कंकरीली, पथरीली, रेतीली, ऊसर आदि। अतः इसके लगाने से भूमि क्षरण जैसी समस्याओं का समाधान संभव है। इसके तेल का उपयोग त्वचा रोगों जैसे दाद, खाज, खुजली, गठिया, लकवा आदि में

** e-mail id : alok.pndy01@gmail.com*

भी किया जाता है। इसके दूध से असाध्य जख्म भर जाते हैं तथा सर्प दंश दूर होता है। जट्रोफा में जट्रोफीन नामक तत्व पाया जाता है, जिसमें कैंसर प्रतिरोधी क्षमता होती है अतः इसका उपयोग कैंसर सम्बन्धी औषधियों में किया जाता है। इसका तेल दस्तावर होता है। इसका उपयोग एण्टी वायरल, एण्टी ट्यूमरल, अल्सर, डायरिया, पेट दर्द, सिर बाल वृद्धि कारक काला डाई आदि के रूप में किया जाता है।

जेट्रोफा डीजल के ज्वलन से उत्सर्जित गैसों में ग्रीन हाउस परिणाम गैसों तथा कार्बन मोनोआक्साइड के परिणाम में उल्लेखनीय कमी देखी गयी है। जबकि खनिज डीजल से अत्यधिक मात्रा में उत्सर्जित ग्रीन हाउस गैसों से धरती के गरमाने (ग्लोबल वार्मिंग) की समस्या निरन्तर बढ़ रही है। वहीं इसका तेल जलाने से धरती के बढ़ते तापमान को कम करने में भी सहायता मिलेगी। रतनजोत का पौधा विभिन्न प्रकार की भूमि में आसानी से स्थापित हो जाता है तथा अन्य पौधों की अपेक्षा बहुत जल्दी बढ़ते हैं और मजबूत हो जाते हैं। रतनजोत के पौधों को जानवरों द्वारा पसन्द नहीं किया जाता है अतः उनके द्वारा नुकसान नहीं पहुँचता जिससे इसके पौधों की बाड़ काफी प्रभावशाली सिद्ध होता है। इसे बहुत कम पानी की आवश्यकता होती है और लम्बे समय तक सूखे को सहन कर सकता है। अतः जेट्रोफा के बीजों से प्राप्त तेल को साबुन बनाने, जलाने, ल्युब्रीकेन्ट बनाने तथा मोमबत्ती बनाने के उपयोग में लाया जाता है। बीजों का तेल निकालने के बाद बची खली से अति उत्तम कार्बनिक खाद बन सकती है। जट्रोफा की मुख्य फसल के साथ–साथ लता वाली फसलें आसानी से ली जा सकती हैं। इसमें मुख्यतः कौंच, करैला, कलिहारी, गिलोय, डायस्कोरिया, विधारा आदि के फसलें लेकर इन फसलों की उत्पादकता भी बढ़ाई जा सकती है। इतना ही नहीं जेट्रोफा की छाया में अश्वगंधा, सर्पगन्धा, सफेद मुसली, अदरक, हल्दी, मैंगो जिंजर आदि की फसलें लेकर अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता है। असम में जट्रोफा की पत्तियों पर तसर सिल्क के कीड़ों का पोषण होता है।

बायोईंधन के उत्पादन के लिए तथा कार्बन संग्रहण क्षमता के निर्धारण हेतु सुनियोजित अध्ययन किया गया। जेट्रोफा के बीज बायोडीजल उत्पादन की आर्थिक व्यवहार्यता को बढ़ा सकते हैं। ***जेट्रोफा कर्कस*** पौधे की विशेषताओं और जैव ईधन के उत्पादन के क्षमता की समीक्षा की गयी। उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों मे सामाजिक, आर्थिक स्थिति, खाद्य उत्पादन बढाने और मिट्टी की गुणवत्ता के प्रभाव तथा कार्बन को पकडने में पौधा अत्यतं प्रभावशाली सिद्ध होता है (माकर तथा बेकर, 2009)। तेजी से कम होते जीवाश्म ईधन भंडार उर्जा के वैकल्पिक स्रोतो के लिए एक गहन खोज में बायोडीजल सभी उपलब्ध विकल्पो के बीच सबसे होनहार के रुप में उभरा है। इसके उत्पादन से बायोडीजल से सम्बन्धित अनुसंधान के क्षेत्र मे एक वृद्धि हुई है। हाल ही तक जेट्रोफा एक बहुत बदनाम और ध्यान नही दिये गये खरपतवार के रुप में माना जाता है। उसके बीज का तेल ईधन गुणवत्ता के कारण महत्वपूर्ण था यह बायोडीजल उत्पादन करने की क्षमता के लिए उच्च मांग में था। जेट्रोफा कार्बन संग्रहण की क्षमता का अत्यन्त महत्वपूर्ण पौधा है (औडियाल तथा पंत, 2008)।

विधि एवं सामग्री

अध्ययन क्षेत्र पडिला इलाहाबाद में स्थित है निदेशांक 25°46'30" उत्तरी अक्षांश 81°25' पूर्वी देशान्तर पर तथा 72 मी0 समुद्र तट से ऊँचाई पर स्थित है। ***जेट्रोफा कर्कस*** के पौधे का रोपण 2 x 2 मी के दूरी गया था। फसल के स्थापित होने के पश्चात सतत् आँकड़ा 3 वर्षो तक जुटाया गया। इस क्षेत्र का औसत तापमान अधिकतम व न्यूनतम क्रमश 32.55°से० तथा 19.58°से० है।

प्रतिदर्श पौध सूची और चयन

एक बार अध्ययन क्षेत्र परिभाषित हो जाने के पश्चात चार पंक्तियों का अक्रमबद्ध ढंग से शाखाओं की ऊँचाई और छत्र व्यास की माप के लिए पौधे का चयन किया गया। पौध माप के साथ शाखाओं की संख्या तथा छत्र व्यास की गणना की गई। उपरोक्त गणनाओं के आधार पर पत्तियों शाखाओं तथा जड़ प्रणाली में जीवभार की मात्रा के संग्रहण के अध्ययन के लिए आंकड़ा जुटाया गया।

जीवभार मात्रा का संग्रहण

वजालविक और साथी (2002) द्वारा प्रस्तावित प्रत्यक्ष व कटान विधि द्वारा जीवभार निर्धारण करने लिए इस्तेमाल किया गया। शाखा के जीवभार के लिए प्रत्येक वर्ष के पौधों का चयन किया गया। शाखा भाग पत्तियों व टहनियों में विभाजित किया गया था। जड़ के जीवभार हेतु चार पौधे चयनित किये गये। प्रत्येक पौधे से गिरी पत्तियों को इकटठा किया गया तथा शाखाओं को काटकर तौला गया। जडों का नमूना 1.5 मी0 x 1.75 मी0 पौधों के बीच तथा 0.40 मी0 गहराई में खुदाई विधि द्वारा निकाल कर तौल किया गया मोटे जड़ों और मुख्य जड़ को काटकर तौला गया। ताजे नमूने को प्रयोगशाला में ले जाकर 75^{0}से तक ओवन में गर्म किया जब तक नमूने का भार स्थिर नही हो गया।

गणना

भूमि के नीचे का शुष्क जीवभार (क)	=	0.633किग्रा
भूमि के उपर का कुल शुष्क जीवभार भार(ख)	=	13.0किग्रा
कार्बन संग्रहण की कुल क्षमता(क+ख)	=	13.633 किग्रा/3 वर्ष
प्रति पौध का प्रति वर्ष कार्बन संग्रहण(क+ख/3)	=	4.544 किग्रा/वर्ष

परिणाम

पौधे का वृद्धि को चित्र 1 में दर्शाया गया है। पौधे का ताजा जीवभार सारणी 1, चित्र 2 तथा पौधे का शुष्क जीवभार सारणी–2, चित्र 3 में क्रमशः दर्शाया गया है। पौधे का ताजा जीवभार तथा पौधे का शुष्क जीवभार का तुलनात्मक अध्ययन चित्र 4 में दर्शाया गया है।

जीवभार उत्पाद

सारणी 1. पौधे का ताजा जीवभार (ताजा जीवभार रू)

उम्र (वर्ष)	भूमि के नीचे का जीवभार किग्रा0	तने का भार किग्रा0 में (क)	शाखाओं का भार किग्रा0 में (ख)	कुल भार भूमि के उपर का जीवभार किग्रा0 में (क+ ख)
3 वर्ष	1.93	5.93	9.07	15.00

सारणी 2. पौधे का शुष्क जीवभार (शुष्क जीवभार रू)

उम्र (वर्ष)	भूमि के नीचे का जीवभार किग्रा0 में	तने का भार किग्रा0 में(क)	शाखाओं का भार किग्रा0 में (ख)	कुल भार भूमि के उपर का जीवभार किग्रा0 में (क+ ख)
3 वर्ष	0.633	4.9	8.1	13.0

तीन वर्ष के पौधे जिनकी कालर परिधि का 33.4 सेमी ऊँचाई 3.8 मी तथा 3 शाखाओं में बंटी थी। तीन वर्ष के प्रति पौधे का शुष्क जीवभार प्राप्तभार (ख) 13.00किग्रा. पाया गया। ***जेट्रोफा कर्कस*** द्वारा कार्बन संग्रहण की कुल क्षमता (क+ख) 13.633 किग्रा./3 वर्ष प्राप्त हुआ। ***जेट्रोफा कर्कस*** के प्रति पौध का प्रति वर्ष कार्बन संग्रहण (क+ख/3) 4.544 किग्रा0/वर्ष (जीवभार के संदर्भ में) प्राप्त हुआ। अतः ***जेट्रोफा कर्कस*** के प्रति हेक्टयर का प्रति वर्ष कार्बन संग्रहण 113.6 टन/वर्ष (जीवभार के संदर्भ में) प्राप्त हुआ।

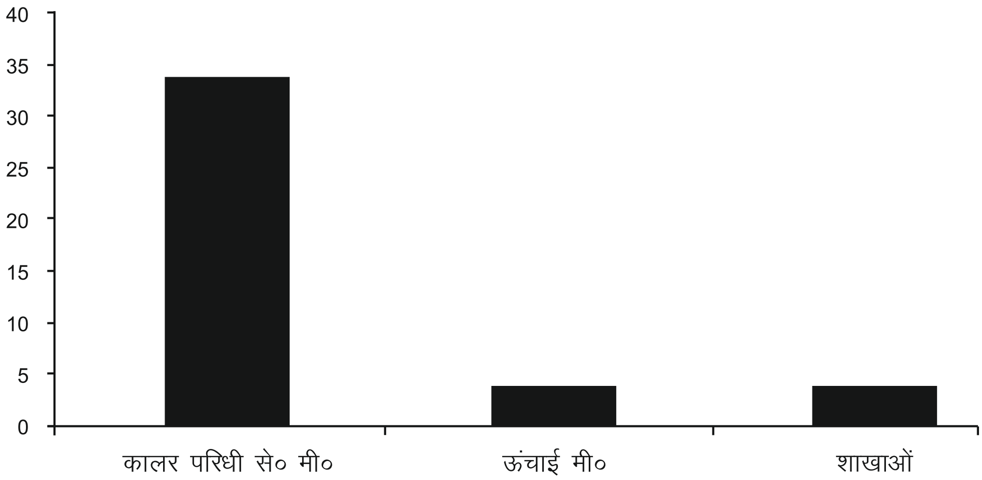

चित्र 1. जेट्रोफा पौधरोपण की वृद्धि

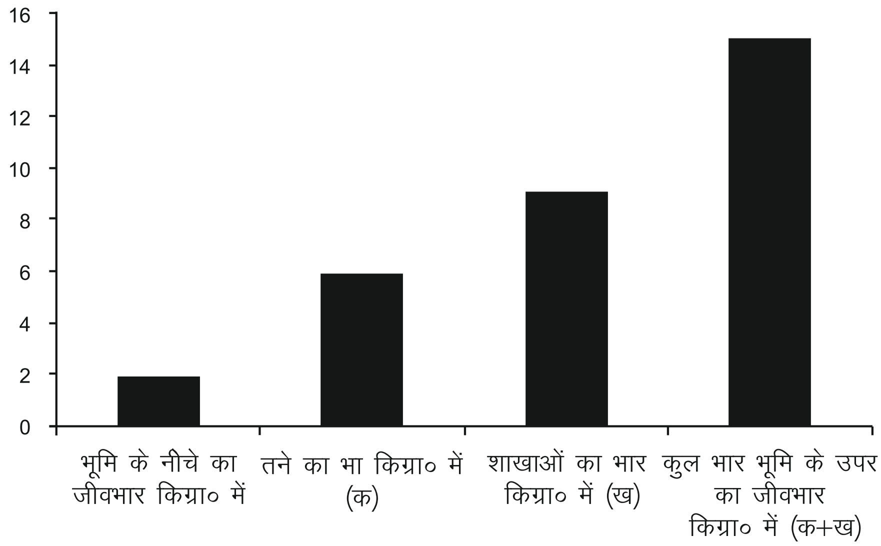

चित्र 2. पौधे का ताजा जीवभार

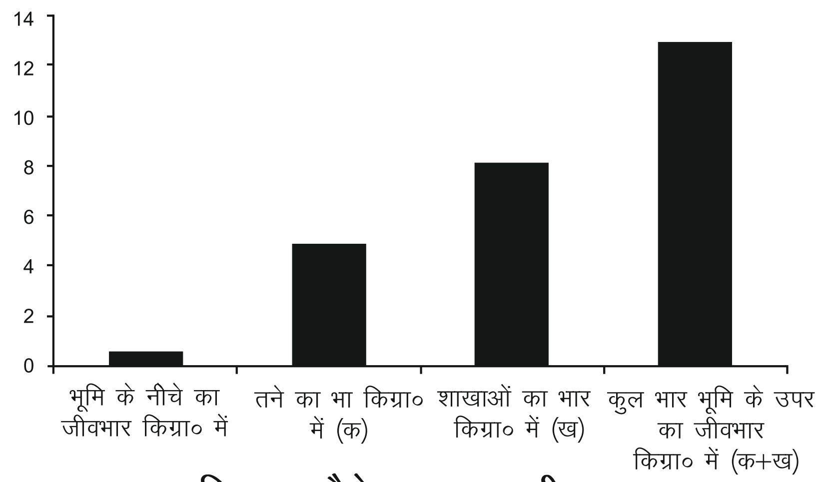

चित्र 3. पौधे का शुष्क जीवभार

निष्कर्ष

पौधे की परिधि तथा सम्पूर्ण पौधा भूमि के नीचे तथा भूमि के उपर जीवभार संग्रह का महत्वपूर्ण सूचक है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पौधे द्वारा संकेत स्तर पर कार्बन संग्रहण का ज्ञान प्राप्त करना था। अध्ययन से पौधे के संग्रहण आँकडा भविष्य में पौधे के विकास तथा ग्रीन हाउस गैस के कटौती में ***जेट्रोफा कर्कस*** के महत्व का पता चलता है। ***जेट्रोफा कर्कस*** के प्रति हेक्टयर का प्रति वर्ष कार्बन संग्रहण 113.6 टन/वर्ष (जीवभार के संदर्भ में) प्राप्त हुआ। अतः बायोईधन की समस्या तथा पर्यावरण की समस्या का समाधान करने में इसका रोपण उपयोगी होगा ।

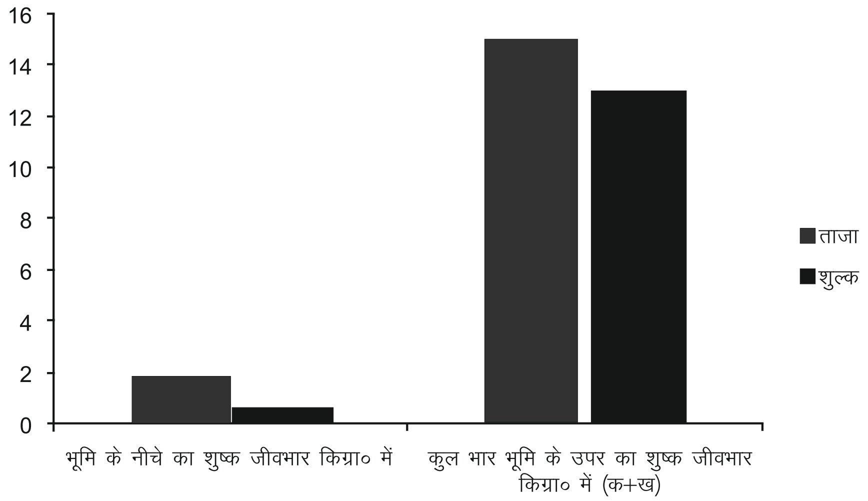

चित्र 4. पौधे का शुष्क जीवभार तथा पौधे का ताजा जीवभार का तुलनात्मक अध्ययन

संदर्भ

औडियाल ए. और पंत डी. 2008. बायोडीजल फ्राम जेट्रोफा : फ्राम विजन टू रियलटी. ***एग्रीकल्लचर फार फूड सिक्योरिटी एण्ड रुरल ग्रोथ,*** 69–108.

माकर एच. और बेकर पीएस. 2009 के ***जेट्रोफा कर्कस*** ए प्रोमिसिंग क्राप फॉर जर्मीनेशन आँफ बायोडीजल एण्ड वेल्यू ऐडेड कोप्रोडक्ट ***यूरोपीयन जर्नल आफ लिपिड साइंस एण्ड टेक्नोलोजी,*** 111(8): 773–787.

सिंह वी. के., दूबे के., श्रीवास्तव ए. 2004.***जेट्रोफा कर्कस***– एक बहुउपयोगी पौधा. सी.एस.एफ.इ.आर. इलाहाबाद प्रकाशन.

शोधतरु 01(01): 14-19, 2015

सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र के प्रतिरोधक क्षेत्र में मुख्य वृक्ष जातियाँ

अनिमेष सिन्हा

वन आनुवांशिकी एवं संकरण प्रभाग वन उत्पादकता संस्थान, राँची

सारांश

पश्चिम बंगाल राज्य के सुंदरबन के पूर्वी भाग में स्थित मैंग्रोव वन को सुरक्षा देने एवं इन जंगलों के प्रसिद्ध बंगाल बाघों के संरक्षण के उद्देश्य से निर्मित सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र के अन्तर्गत दो सीमाओं अर्थात् सजनेखली एवं बसिरहाट में प्रस्तुत अध्ययन को संचालित किया गया। वृक्ष जातियों के लिए जैव विविधता, आवृति, आधारीय क्षेत्र एवं महत्व मान सूचकांक (आई. वी. आई.) के आँकड़े हेतु चतुष्कोणीय विधि का प्रयोग किया गया। सर्वाधिक महत्व मान सूचकांक दोनों सीमाओं में गेंवा में जिसके बाद सजनेखली सीमा में हेंतल एवं बाईन और बसिरहाट सीमा में सुंदरी एवं गर्जन द्वारा दर्ज किया गया। बसिरहाट सीमा के अन्तर्गत नदी के ताजे जल के बहाव के कारण सजनेखली सीमा की तुलना में सुंदरी की प्रबलता ज्यादा थी। सभी जैव एवं अजैव कारकों से महत्वपूर्ण वनस्पति संपदा एवं मैंग्रोवों के नाजुक पारिस्थितिकी तंत्र सुंदरबन की सुरक्षा, उचित प्रबंधन एवं संरक्षण के लिए प्रस्तुत अध्ययन एक अवलोकन देता है।

मुख्य शब्दः जैव विविधता, पारिस्थितिकी, महत्व मान सूचकांक, मैंग्रोव वन, सुंदरी

Important tree species in protected area of Sunderban Tiger Reserve

Animesh Sinha*

Forest Genetics and Breeding Division, Institute of Forest Productivity, Ranchi

Abstract

The present study was conducted at Sajnekhali and Basirhat demarcating two boundaries of Sunderban Tiger Reserve Area famous for Bengal tiger and Mangrove forest situated at eastern part of Sunderban. The quadrate methodology was adopted for collecting data on biodiversity, frequency, basal area and important value index (I.V.I) of three species. The highest value IVI was recorded for Gainva in both areas fallowed by Hental and Bine in Sajnekhali and Sundari and Garjan in Basirhat. The study provides an insight about biotic and abiotic features, important vegetation wealth and fragile ecosystem of Mangroves for security, judicious management and conservation of Sunderban.

Key Words: Biodiversity, Ecology, IVI, Mangrov forest, Sundari.

Citation: Sinha A. 2015. Important tree species in protected area of Sunderban Tiger Reserve. *Shodhtaru* 1: 14-19.

* e-mail id : sinhaa@icfre.org

प्रस्तावना

मैंग्रोव उष्णकटिबन्धीय एवं उपोष्ण प्रदेशों के नदी मुहानों, खारे समुद्री पानी की झीलों, कटाव वाले स्थानों तथा दलदल भूमि में उगने वाले पौधों को कहा जाता है। ऐसा समझा जाता है कि मैंग्रोव वनों का सर्वप्रथम उद्गम भारत–मलय क्षेत्रों में हुआ और आज भी इस क्षेत्र में विश्व के किसी भी स्थान से अधिक मैंग्रोव प्रजातियां पायी जाती हैं। मैंग्रोव 123 देशों के तटीय क्षेत्रों एवं भूभागों में पाए जाते हैं (एफ. ए. ओ., 2007)। मैंग्रोव 70–73 जातियों के वृक्षों एवं क्षुपों का अपेक्षाकृत छोटा समूह है (पोलीडोरो और साथी, 2010; स्पाल्डिन्ग और साथी, 2010)। भारत में कुल मैंग्रोव क्षेत्र 4662.56 वर्ग किलोमीटर (एफ. एस. आई., 2011) है जो कि वैश्विक मैंग्रोव क्षेत्र का 3 प्रतिशत है। भारत में सर्वाधिक मैंग्रोव (46.2%) पश्चिम बंगाल के सुंदरबन में पाया जाता है।

पश्चिम बंगाल के सुंदरबन में गंगावर्ती डेल्टा भारत में वानस्पतिक संपदा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग हैं। इस भूभाग में मैंग्रोंव क्षेत्र निःसंदेह एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यह न केवल समुद्रतटीय लोगों की आजीविका को प्रोत्साहित कर सतत सामाजिक–आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है बल्कि मृदाक्षरण, बाढ़ और चक्रवात से उनकी रक्षा भी करता है। इसके वानस्पतिक संपदाए संरचना और इसमें होने वाले परिवर्तनों की अच्छी समझ इसके उचित दस्तावेज लेखन, प्रबंधन और संरक्षण के लिए आवश्यक है।

सामग्री एवं विधि

अध्ययन क्षेत्र

वर्ष 1973 में पश्चिम बंगाल राज्य के सुंदरबन के पूर्वी भाग में स्थित मैंग्रोव वन को सुरक्षा देने एवं इन जंगलों के प्रसिद्व बंगाल बाघों के संरक्षण के उद्देश्य से सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र (एस. टी. आर.) घोषित किया गया। एस. टी. आर. के उत्तरी भाग में घनी आबादी वाले गाँवों के साथ इसकी सम्मिलित सीमा है। यह प्रतिरोधक क्षेत्र एवं बहुदेशीय उपयोगी क्षेत्र की अवधारणा को आवश्यक बनाता है। एस. टी. आर. के कुल क्षेत्र 2585 वर्ग किलोमीटर में से 1225 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की पहचान प्रतिरोधक क्षेत्र के रूप में की गई है। इस प्रतिरोधक क्षेत्र के अन्तर्गत दो सीमाओं अर्थात् सजनेखली एवं बसिरहाट में प्रस्तुत अध्ययन को संचालित किया गया (चित्र 1)।

अध्ययन विधि

अप्रैल 2012 से मई 2012 के दौरान एक पादपसमाज विज्ञान संबंधी अध्ययन किया गया। सुगम क्षेत्रों में यादृच्छिक प्रतिदर्श प्रक्षेत्रों (रेंडम सैंपल प्लॉट) का चयन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में कुल 12 प्रतिदर्श प्रक्षेत्र स्थापित (सारणी 1) किए गए और उनका अध्ययन हुआ। वृक्ष जातियों के लिए जैव विविधता, आवृति, आधारीय क्षेत्र एवं महत्व मान सूचकांक (आई. वी. आई.) के आँकड़े हेतु मिश्रा (1968) के अनुसार चतुष्कोणीय विधि का प्रयोग किया गया। चतुष्कोण का आकार वृक्षों के लिए 10 मी x 10 मी क्षुपों (श्रब) के लिए 3 मी x 3 मी एवं शाकों (हर्ब) के लिए 1 मी x 1 मी निर्धारित किया गया। प्रत्येक प्रतिदर्श प्रक्षेत्र में पाँच चतुष्कोणों का निर्माण किया गया। निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करते हुए शेनॉन–विनर सूचकांक (H) की गणना की गई।

$$H = \Sigma p_i \times \ln p_i$$

जहाँ $p_i = i$ वे जाति के सदस्यों एवं सभी जाति के सदस्यों की संख्या का अनुपात

संग्रहित पौधों को पारम्परिक विधि से प्रसंस्कृत कर संस्थान के हर्बेरियम में रखा गया। हर्बेरियम में संग्रहित नमूनों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया एवं उपलब्ध दस्तावेजों की सहायता से उनकी पहचान की गई।

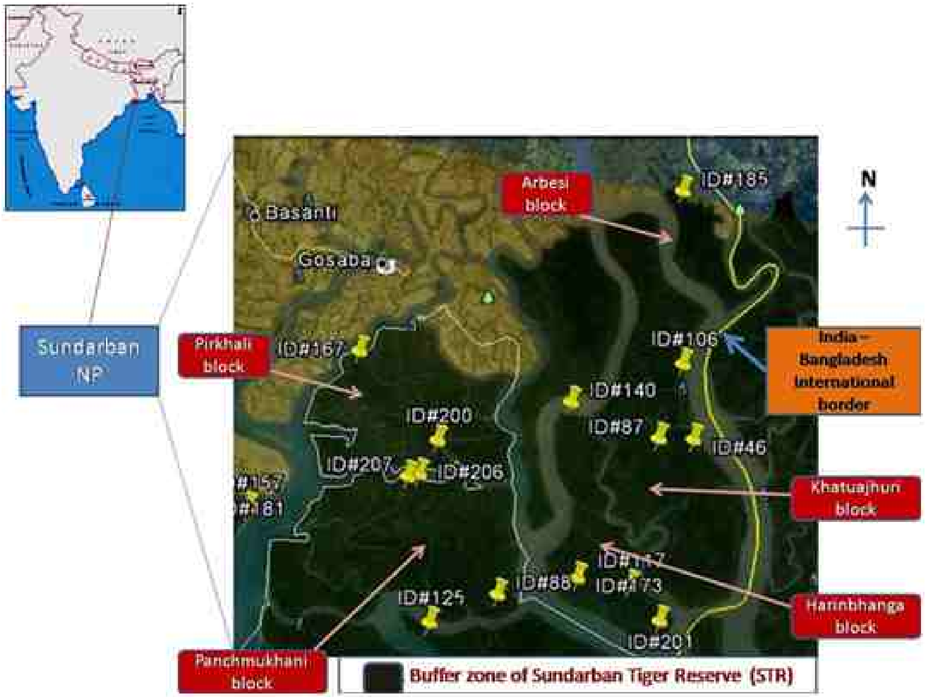

चित्र 1. अध्ययन क्षेत्र (सजनेखली एवं बसिरहाट सीमाओं के अंतर्गत पाँच खंड)

सारणी 1. एस. टी. आर. के कुल 12 प्रतिदर्श प्रक्षेत्र

क्रम संख्या	सैंपलप्लॉट आई. डी.	वन रेंज	ब्लॉक	कॉमपार्टमेंट
1	167	सजनेखली	पीरखली	II
2	200	सजनेखली	पीरखली	VI
3	207	सजनेखली	पंचमुखानी	III
4	206	सजनेखली	पंचमुखानी	III
5	88	सजनेखली	पंचमुखानी	VI
6	185	बसिरहाट	अरबेसी	I
7	106	बसिरहाट	अरबेसी	II
8	140	बसिरहाट	अरबेसी	III
9	46	बसिरहाट	खटनाझूरी	I
10	87	बसिरहाट	खटनाझूरी	I
11	173	बसिरहाट	हरिणभंगा	II
12	117	बसिरहाट	हरिणभंगा	III

परिणाम एवं विवेचना

एस. टी. आर. के दो सीमाओं के महत्व मान सूचकांक (आई. वी. आई.) सारणी 2 में दिए गए हैं। सारणी से यह पता चलता है कि इस क्षेत्र में पाए जाने वाले 17 जातियों में से 11 जातियों को दोनों सीमाओं में चिन्हित किया गया है। विभिन्न वृक्ष मैंग्रोव जातियों की सर्वाधिक संख्या (15) सजनेखली सीमा में पायी गई। इसका कारण यह हो सकता है कि सजनेखली सीमाए सजनेखली वन्यजीव अभयारण्य के अंतर्गत है, जो कि पर्यटन के लिए मुक्त हैए परन्तु अन्य गतिविधियों जैसे मछली पकड़ने, शहद जमा करने एवं शिकार करने पर प्रतिबंध है। वहीं दूसरी ओर अरबेसी, हरिणभंगा एवं खटनाझूरी प्रखंडों के बसिरहाट सीमा के अंतर्गत अध्ययन

किया गयाए जो कि वन्य कार्यों, नियमित रूप से मछली पकड़ने और एन. टी. एफ. पी. के संचय के लिए मुक्त रखा गया है ताकि अभयारण्य से आस–पास रहने वाले लोगों की जरूरत को पूरा किया जा सके (सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र प्रबंधन योजनाए 2000–01 से 2009–10) वन विभाग (पश्चिम बंगाल सरकार)। फिर भी किसी जाति के उसके सीमा में अनुपस्थिति का अर्थ है एक वृक्ष के रूप में उसकी अनुपस्थिति। बहुत सारे संदर्भों में छोटे बीजोद्भिदों एवं झाड़ियों के रूप में वृक्ष जातियाँ उपलब्ध हैं।

ओरा ***(सोनेरेशिया ग्रीफिथी)*** केवल सजनेखली में पाया गया था। इस जाति को इसके संरक्षण के लिए अविलंब देख–रेख की आवश्यकता है जैसा कि यह आई. यू. सी. एन. के द्वारा 'गंभीर रूप से विलुप्तप्राय' घोषित किया जा चुका है।

सर्वाधिक आई. वी. आई (महत्व मान सूचकांक) दोनों सीमाओं में गेंवा में जिसके बाद सजनेखली सीमा में हेंतल एवं बाईन और बसिरहाट सीमा में सुंदरी एवं गर्जन द्वारा दर्ज किया गया। परागण विज्ञान के प्रमाण से यह स्पष्ट हो चुका है कि पाँच हजार वर्ष पूर्व सुंदरबन के पश्चिमी भागो में सुंदरी पर्याप्त संख्या में मौजूद था और वर्तमान में खारेपन के वृद्धि के कारण अपेक्षित रूप से कम हो चुका है (ब्लासकोए 1975; रहमान, 1990)। क्रिश्टेन्सेन (1984) के अनुसार गेंवा द्वारा सुंदरी का क्रमिक पुनः स्थापन दीर्घकालीन प्रभाव है।

बसिरहाट सीमा के अन्तर्गत नदी के जल के बहाव के कारण सजनेखली सीमा की तुलना में सुंदरी की प्रबलता ज्यादा थी। उसी कारण से गोलपत्ता को बसिरहाट सीमा में देखा गया किन्तु सजनेखली सीमा में नहीं। निम्नतम आई. वी. आई सजनेखली में सुंदरी में तथा बसिरहाट में तोरा ***(एजियालाइटिस रोटण्डीफोलिया)*** में दर्ज की गई। सजनेखली सीमा के अध्ययन क्षेत्र के अधिकतर भागों में दलदली ताड़ वन प्रकार देखा गया जिसका वर्णन चैम्पियन एवं सेठ (1968) ने किया था। अतः हेंतल की प्रबलता बसिरहाट सीमा की तुलना में ज्यादा थी। फिर भी दोनो सीमाओं में गेंवा की उपस्थिति दूसरी जातियों से ज्यादा हो चुकी है। यह इस जाति के विस्तृत लवणीयता मात्रा में सहनशीलता के कारण हो सकता है।

सारणी 2. सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र के प्रतिरोधक क्षेत्र में मैंग्रोव वृक्षों के महत्व मान सूचकांक

क्रम सं.	प्रजाति	स्थानीय नाम	बसिरहाट सीमा	सजनेखली सीमा
1	*एजियालाइटिस रोटण्डीफोलिया*	तोरा	2.3	0.0
2	*एजिसेरस कोरनीक्युलेटम*	खलसी	0.0	11.9
3	*एविसेनिया अल्बा*	काला बाईन	0.0	7.3
4	*एविसेनिया मेरीना*	पियारा बाईन	9.0	30.4
5	*एविसेनिया ऑफिसिनेलिस*	सफेद बाईन	11.8	27.5
6	*ब्रूगेरिया जिम्नोरहिजा*	काँकड़ा	22.8	13.8
7	*सेरिओप्स डिकेंड्रा*	झाड़ी गोराण	0.0	12.9
8	*सेरिओपा टगल*	मठ गोराण	4.8	27.3
9	*एक्जोईकेरिया एगालोचा*	गेंवा	55.4	67.4
10	*हेरिटियेरा फोम्स*	सुंदरी	18.1	5.2
11	*नीपा फ्रुटिकेन्स*	गोलपत्ता	22.0	0.0
12	*फिनिक्स पालुडोसा*	हेंतल	30.0	35.2
13	*राइजोफोरा मुक्रोनेटा*	गर्जन	16.2	7
14	*सोनेरेशिया एपिटाला*	केवड़ा	12.4	21.7
15	*सोनेरेशिया ग्रीफिथी*	ओरा	0.0	5.7
16	*जाइलोकार्पस ग्रानेटम*	धुन्दूल	10.1	10.8
17	*जाइलोकार्पस मेकोनजेनसिस*	पशुर	22.8	15.8
	कुल		300	300

बारह प्रतिदर्श प्रक्षेत्रो में से उच्चतम एवं निम्नतम शेनॉन–विनर सूचकांक वाले प्रतिदर्श प्रक्षेत्र बसिरहाट सीमा में पाये गए (सारणी 3)।

सारणी 3. सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र में मैंग्रोव वृक्षों के शेनॉन–विनर सूचकांक

वन सीमा	H
सजनेखली सीमा	1.60 . 2.09
बसिरहाट सीमा	1.43 . 2.40

निष्कर्ष

सभी जैव एवं अजैव कारकों से महत्वपूर्ण वनस्पति संपदा एवं मैंग्रोवों के नाजुक पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाना चाहिए। स्वस्थाने (इन सिटू) संरक्षण के लिए भारत सरकार ने इस क्षेत्र को 2001 में सुंदरबन जैवमण्डल संरक्षण क्षेत्र (एस. बी. आर.) घोषित किया है। सुंदरबन जैवमण्डल संरक्षण क्षेत्र में मैंग्रोवों के क्षतिपूर्ति एवं संरक्षण के लिए विशेष रणनीति विकसित की गई है तथा दलदल भूमि, नष्ट हो चुके मैंग्रोव वनों एवं नदी के तटबंधों पर 17000 हेक्टेयर से ज्यादा क्षेत्र में विगत दो दशकों (1989. 2011) के दौरान मैंग्रोव जाति का वृक्षारोपण किया गया (व्यास और सेनगुप्ताए 2012)। सुंदरबन के उचित प्रबंधन एवं संरक्षण के लिए प्रस्तुत अध्ययन एक अवलोकन देगी। फिर भी एक बेहतर तस्वीर पाने के लिए ज्यादा बड़े क्षेत्रों में इस प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता है।

आभार

इस अध्ययन हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून का आभार व्यक्त किया जाता है। लेखक श्री रामेश्वर दास, भूतपूर्व निदेशक, वन उत्पादकता संस्थानए राँची एवं डॉ. एस. मुखर्जी, भूतपूर्व निदेशक, सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद करता है। श्री विश्वजीत जना का मार्गदर्शन एव दल के सभी सदस्यों यथा श्री गौतम चक्रवर्ती, श्री रवीन्द्र राज लालए श्री सुशीत बनर्जी, श्री अमित कुमार साहा एवं श्री हरिशंकर लाल के द्वारा दी गई सहायता उल्लेखनीय एवं धन्यवाद के योग्य है। लेखक श्री अजय कुमार का हिन्दी अनुवाद के लिए एवं श्री अशोक कुमार यादव का हिन्दी टंकण हेतु धन्यवाद व्यक्त करता है।

संदर्भ

मिश्रा, आर. 1968. इकोलाजिकल वर्क बुकए ऑक्सफोर्ड प्रेस, नई दिल्ली।

एफ. ए. ओ. 2007. द वर्ल्डस मैंग्रोव्स 1980–2005, फॉरेस्ट्री पेपर नः 153 रोमः फूड एण्ड एग्रीकल्चर ऑरगेनाइजेशन ऑफ द यूनाईटेड नेशन्स 75.

पोलिडोरो, बी. ए., कारपेन्टर, के. ई., कॉलिन्स, एल., ड्यूक, एन. सी., एलिसन ए. एम.ए एलिसन जे. सी.ए फोर्न्सवर्थ ई. जे., फरनेन्डो ई. एस.ए काथिरेसन, के.ए कोयडम, एन. ई., लिविंगस्टोन, एस. आर. एमियागीए टी. मूर जी. ई.ए वीन, एन. एन.ए औंग, जे. ई.ए प्रिमावेरा जे. एच. ए एस. जी. सैलमो III, जे. सी. सेनसियेग्को ए जे. सी. सेनसियेंगको एएस. सुकार्डजो एवाई. वेंग एवं जे. डबल्यू.ए एच. योन्ग 2010. द लॉस ऑफ स्पीशिज मैग्रोव एक्सटीन्कशन रिस्क एण्ड ज्योग्राफिक एरियाज ऑफ ग्लोबल कन्सर्न प्लॉस वनड. 1–10.

स्पाल्डिन्ग एम., कईनुमा एम. एवं कॉलिन्स एल. 2010. वर्ड्स एटलस ऑफ मैंग्रोव्सए लंदनः अर्थस्कैन प्रकाशन 319.

व्यास पी. एवं सेनगुप्ता के. 2012. मैग्रोव कंजरवेशन एण्ड रिस्टोरेशन इन दी इण्डियन सुंदरबन्स. इनः डी. जे. मैक्इन्टोश, आर. महिन्दारपाला एवं एम. भारकोपौलोष शेयरिंग (सम्पादित) लेसन्स ऑन मैंग्रोव रिस्टोरेशन। बैकॉक, थाईलैण्ड मैग्रोव्स फॉर द फ्यूचर. ग्लैण्ड, स्वीटजरलैण्ड आई. यू. सी. एन.ए 93–104.

ब्लास्को एफ. 1975. द मॅनग्रोव्स आफ इंडिया. इन्स्टिटट्यूट फ्रॅन्सिस पॉइन्डिचेरी ट्रावक्स सेक. साइंटी. एट टेक. 14.

क्रिसटेन्षन बी. 1984. एकोलॉजिकल आस्पेक्ट्स आफ द सुंदरबन. एफ. ए. ओ., रोम.

रहमान एम. ए. 1990. ए कॉप्रेहेन्सिव रिपोर्ट ऑन सुंदरी ***(हेरिटियेरा फोम्स)*** ट्रीज़ विथ पर्टिक्युलर रेफरेन्स टू टॉप ड्राइंग इन सुंदरबन. इनः रहमान एम. ए., ए. खंडारकार,एफ. यू. अहमद एवं एम. ओ. अली. (सम्पादित). प्रो. ऑफ द सेमिनार ऑन टॉप ड्राइंग ऑफ सुंदरी ***(हेरिटियेरा फोम्स)*** ट्रीज़. बांग्लादेश अग्रिकल्चर रिसर्च काउन्सिल ढाका, 12–63.

शोधतरु 01(01): 20-23, 2015

वनस्पति जन्य प्राकृतिक जल शोध

पी. के. मिश्रा*

स्नाकोत्तर वनस्पति विज्ञान विभाग

विनोबा भावे विश्वविध्यालय, हजारीबाग

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में जल से जीवाणुओं की संख्या को कम करना अथवा उन्हें समाप्त करने तक ही केन्द्रित रखा गया है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र ''आयुर्वेद'' में ऐसे अनेकों पौधों का वर्णन प्राप्त होता है जिनमें जीवाणु रोधक गुण पाए जाते हैं। इस शोध में ***कैलेन्डुला आफिसिनेलिस, होलेरिना एनटीडिसेन्ट्रीका, पोन्गामिया पिन्नाटा*** का उपयोग जल शोधक के रूप में किया गया। शोध से प्राप्त आकड़ों में यह पाया कि ***कैलेन्डुला आफिसिनेलिस*** से उपचारित जल में जीवाणुओं की संख्या में 81.1 प्रतिशत से 91 प्रतिशत, ***होलेरिना एनटीडिसेन्ट्रीका*** से उपचारित अशुद्ध जल में जीवाणुओं की संख्या में 70.2 प्रतिशत से 82.4 प्रतिशत एवं ***पोन्गामिया*** के माध्यम से जलोपचार करने पर जीवाणुओं की संख्या में 14.3 प्रतिशत से 37.7 प्रतिशत तक कि कमी पायी गई। अतः ***कैलेन्डुला आफिसिनेलिस*** तथा ***होलेरिना एनटीडिसेनट्रीका*** का उपयोग पानी में पाए जाने वाले जीवाणुओं की संख्या को कम करने के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता हैं।

मुख्य शब्दः जल शोधक, जीवाणु रोधक, कैलेन्डुला, होलेरिना, पोन्गामिया

Natural water purification through plants

P. K. Mishra*

Postgraduate Botany Department

Vinoba Bhave University, Hazaribagh

Abstract

The present study is centred around to restrict or decimate bacterial population. The ancient Indian medical treatise "Ayurveda" describes several medicinal plants with antibiotic property. In this research, *Calendula officinalis*, *Holarrhena antidysenterica* and *Pongamia pinnata* were used for water purifier. The data obtained so demonstrated that the bacterial population in treated unpurified water decreased by 81.1-91% in *Calendula officinalis*, 70.2-82.4% in *Holarrhena antidysenterica* and 14.3-37.7% in *Pongamia pinnata*. Therefore, *Calendula officinalis* and *Holarrhena antidysenterica* may be successfully used to reduce bacterial population in treated water.

Key Words: Water purifier, Bacterial resistance, *Calendula, Holarrhena, Pongamia*

Citation: Mishra P. K. 2015. Natural Water Purification through plants. *Shodhtaru* 1: 20-23.

प्रस्तावना

पृथ्वी पर जीवन को बचाए रखने में जल की उपयोगिता एवं महत्व निर्विवाद रूप से स्थापित हैं जल का दो गुण-एक अच्छा घोलक होना तथा आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की क्षमता अर्थात उसका तरल

** e-mail id : malay_mishra@yahoo.com*

होना जीव जंतुओं के लिए अति लाभकारी होता है। जीव-जन्तुओं एवं पौधों में विभिन्न जीवनोपयोगी यौगिक जल के माध्यम से ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते हैं। शायद इसी कारण से हमारे शरीर में होने वाले सभी जैव रसायनिक क्रियाएँ जल की उपस्थिति में ही होती है। कोशिका में जल का अभाव मृत्यु का पर्याय होता हैं परंतु यह विडम्बना ही है कि जल का यह गुण उसे प्रदूषण के प्रति संवेदनशील भी बना देता है। पानी में अधिकांश प्रदूषण घुल भी जाते हैं तथा उनका बहाव भी दूर-दूर तक हो जाता है।

पानी की उपलब्धता पर यदि गौर किया जाए तो मात्र 2.6 प्रतिशत ही मीठा पानी ब्रह्मांड पर है जिसका उपयोग जीव जंतु कर सकते हैं। शेष अनुपयोगी खारा पानी हैं कुल उपलब्ध मीठे पानी का भी 99 प्रतिशत ध्रुवीय क्षेत्र में बर्फ के रूप में पाया जाता है अतः हम शेष 1 प्रतिशत का ही उपयोग कर पाते हैं। पूरे विश्व में 1360 घन कि. मी. पानी की मांग थी जो कि सन् 1990 में बढ़कर 4130 घन कि. मी. हो गया। 2000 तक पूरे विश्व में प्रतिवर्ष 5340 घन कि. मी. पानी का उपयोग होने लगा। विभिन्न कारणों से होने वाले जल-प्रदूषण से स्थिति और भी विकट होती जा रही हैं अकसर ही यह कहा जाता है कि भविष्य में यदि विश्व युद्ध हुआ तो वह जल के लिए होगा। इस परिस्थिति में जल का शुद्धीकरण करना तथा उन्हें पुनः उपयोग के लायक बनाना अनिवार्य हो गया है।

वर्तमान में उपलब्ध एवं प्रचलित जल शोधन की तकनीक काफी खर्चीली एवं जटिल है, हैनबर्ग (1993) के अनुसार विकसित देश जैसे फ्रांस, इटली तथा जापान की क्रमशः 52 प्रतिशत, 60 प्रतिशत एवं 39 प्रतिशत जनता को जल के शुद्धीकरण की तकनीक उपलब्ध हैं विकासशील देशों के लिए यह आंकड़ा 11 प्रतिशत से 23 प्रतिशत तक ही सीमित है। ग्रामीण जनता पर ध्यान दिया जाए तो आंकड़ा और भी नीचे चला जाएगा। अतः कम लागत वाली सरल तकनीक का विकसित होना समय की मांग है। पानी को प्रदूषित करने वाले कारकों की सूची काफी लम्बी हैं परन्तु उनमें एक अति महत्वपूर्ण जीवाणु हैं जिनके कारण विभिन्न प्रकार की बीमारियों होना एक आम बात है। प्रस्तुत अध्ययन जल से जीवाणुओं की संख्या को कम करना अथवा उन्हें समाप्त करने तक ही केन्द्रित रखा गया है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र "आयुर्वेद" में ऐसे अनेकों पौधों का वर्णन प्राप्त होता है जिनमें जीवाणु रोधक गुण पाए जाते हैं। ***ऐरिस्टोलेकिया ब्रैडियाटा, मोरिंगा ओलिफेरा, कैलेन्डुला आफिसिनेलिस, होलेरिना एनटीडिसेन्ट्रीका, पोन्गामिया पिन्नाटा*** इत्यादि इनमें से प्रमुख हैं ।

जॉन (1986) ने ऐसे कई पौधों का जिक्र किया है जिनका उपयोग अफ्रीका में जलशोधक के रूप् में विशेषतः जीवाणुओं को नियन्त्रित करने के लिए किया जाता है। राजेन्द्रन एवं सुन्दर राजन (1995) नें अपने शोध के आधार पर नीम का उपयोग जल शोधक के रूप में करने का सुझाव दिया है। मिश्र एवं अन्य (1996) ने पाया कि मोरिंगा ओलिफेरा का बीज पानी में उपस्थित जीवाणुओं की संख्या को आश्चर्यजनक रूप से कम कर देता हैं वारहर्ट एवं मैक कोनाची (1996) ने पाया कि ***मोरिंगा ओलिफेरा*** का बीज पानी में उपस्थित जीवाणुओं की संख्या को आश्चर्यजनक रूप से कम कर देता हैं वारहर्ट एवं मैक को नाची (1996) ने ***मोरिंगा ओलिफेरा*** से निर्मित सक्रिय कार्बन के द्वारा दूषित जल से जीवाणुओं की संख्या को पर्याप्त घटाने में सफलता प्राप्त की है। इन अध्ययनों के आलोक में प्रस्तुत शोधकार्य कैलेन्डुला, होलेरिना एवं पोन्गामिया के जीवाणुरोधी क्षमता तथा उनके जलशोधक के रूप में संभावित उपयोग को परखने के लिए किया गया है।

सामग्री एवं विधि

कैलेन्डुला अफिसिनेलिस, होलेरिना एनटीडिसेन्ट्रिका एवं ***पोन्गामिया पिन्नाटा*** को एकत्र किया गया, धोया गया एवं छाएदार स्थान पर सूखने के लिए रखा गया। सूखने के पश्चात तीनों पौधों का चूर्ण बना लिया गया। प्रयोग के लिए ऐसा जल लिया गया जिसमें जीवाणुओं की संख्या काफी अधिक थी। जीवाणुओं की संख्या को ए. पी. एच. ए. (1980) के द्वारा विकसित विधि के माध्यम से जान लिया गया। इसके पश्चात तीन मिट्टी के बर्तन में 10–10 लीटर दूषित जल भर लिया गया तथा उसमें क्रमशः 1 ग्राम प्रति लीटर, 2 ग्राम प्रति लीटर तथा 3 ग्राम प्रति लीटर के दर से एक पौधों का चूर्ण डाल दिया गया। इस प्रयोग को तीनों पौधों के साथ

किया गया। इसके पश्चात क्रमशः 24 घंटे, 48 घंटे, 72 घंटे तथा 96 घंटे के अन्तराल पर प्रत्येक बर्तन के पानी में जीवाणुओं की संख्या का निर्धारण कर लिया गया। प्रत्येक पौधे के लिए इस प्रयोग को 10 के गुणक में बार–बार दोहराया गया तथा जीवाणुओं के औसत संख्या के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया। प्राप्त परिणाम को सांख्यिकी विधि से जांचा गया।

परिणाम एवं विवेचना

प्रस्तुत शोध के आधार पर प्राप्त परिणाम को सारणी संख्या 1–3 में दर्शाया गया है। ***कैलेन्डुला आफिसिनेलिस*** से उपचारित जल में जीवाणुओं की संख्या में 81.1 प्रतिशत से 91 प्रतिशत तक की कमी देखी गई। जीवाणुओं की संख्या में कमी उपचार अवधि तथा पौधे के चूर्ण की मात्रा देने से ही प्रभावित हुई। एक ग्राम प्रति लीटर की मात्रा से 24 घंटे के पश्चात जीवाणुओं की संख्या में 81.1 प्रतिशत की कमी देखी गई जो कि 48 घंटे, 72 घंटे तथा 96 घंटे के उपरांत क्रमशः 82.8 प्रतिशत, 84.6 प्रतिशत लीटर की मात्रा से विभिन्न अन्तराल पर 83.2 प्रतिशत से 87.1 प्रतिशत तक की कमी जीवाणुओं की संख्या में लक्षित हुई है। तीन ग्राम प्रति लीटर की मात्रा पर यह कमी 84.9 प्रतिशत से बढ़ते हुए 91 प्रतिशत तक जा पहुँची।

सारणी 1. ***कैलेन्डुला आफिसिनेलिस*** के प्रभाव से दूषित जल में जीवाणुओं की संख्या में आई कमी

समय	1 ग्राम/लीटर	2 ग्राम/लीटर	3 ग्राम/लीटर
24 घंटे	81.1%	83.2%	84.9%
48 घंटे	82.8%	84.6%	87.8%
72 घंटे	84.6%	86.8%	88.6%
96 घंटे	85.7%	87.1%	91%

होलेरिना एनटीडिसेन्ट्रीका से उपचारित अशुद्ध जल में जीवाणुओं की संख्या में 70.2 प्रतिशत से 82.4 प्रतिशत तक की कमी आंकी गई। एक ग्राम प्रति लीटर की मात्रा से पानी को उपचारित करने पर 24 घंटे से 96 घंटे के अन्तराल पर 70.2 प्रतिशत तक की कमी आंकी गई। जीवाणुओं की संख्या में सर्वाधिक कमी तीन ग्राम प्रति लीटर की मात्रा से जल को उपचारित करने पर पायी गई। 24 घंटे से 96 घंटे के अन्तराल पर यह कमी 78.8 प्रतिशत से 82.4 प्रतिशत तक पहुँच गई ।

सारणी 2. ***होलेरिना एनटीडिसेन्ट्रिका*** के प्रभाव से दूषित जल में जीवाणुओं की संख्या में आई कमी

समय	1 ग्राम/लीटर	2 ग्राम/लीटर	3 ग्राम/लीटर
24 घंटे	70.2%	73.4%	78.8%
48 घंटे	72.1%	74.8%	79.6%
72 घंटे	73.6%	75.6%	81.6%
96 घंटे	73.9%	76.1%	82.4%

पोन्गामिया के माध्यम से जलोपचार करने पर जीवाणुओं की संख्या में हुई कमी 14.3 प्रतिशत से 37.7 प्रतिशत तक ही पहुँच पाई। जीवाणुओं की संख्या में हुई कमी का कोई निर्धारित क्रम भी नहीं देखा गया।

सारणी 3. ***पोन्गामिया पिन्नाटा*** के प्रभाव से दूषित जल में जीवाणुओं की संख्या में आई कमी

समय	1 ग्राम / लीटर	2 ग्राम / लीटर	3 ग्राम / लीटर
24 घंटे	14.3%	16.6%	28.9%
48 घंटे	16.2%	17.3%	30.4%
72 घंटे	16.8%	18.9%	34.8%
96 घंटे	17.1%	20.0%	37.7%

उपरोक्त परिणाम से यह निश्चित हो जाता है कि ***कैलेन्डुला आफिसिनेलिस*** तथा ***होलेरिना एनटीडिसेनट्रीका*** का उपयोग पानी में पाए जाने वाले जीवाणुओं की संख्या को कम करने के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता है। पोन्गमिया अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली था। प्रस्तुत शोध एवं प्राप्त परिणामों से स्पष्ट हो जाता है कि वनस्पति जन्य पदार्थों का उपयोग जल शोधन के लिए सफलता पूर्वक किया जा सकता है। इस तकनीक का महत्व इस बात से और भी बढ़ जाता है, कि इसे सुगमता से ग्रामीण क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है। इस विधि पर आनेवाला खर्च भी नगण्य है अतः इसे कोई आसानी से अपना सकता है। इस दिशा में और भी विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है।

संदर्भ

ए. पी. एच. ए. 1985. स्टैन्डर्ड मेथड फॉर एक्जामिनेशन ऑफ वाटर एण्ड वेस्ट वाटर, अमेरिकन पब्लिक हेल्थ एसोसिएशन, वाशिंगटन डी. सी.

हैनबर्ग, पी. 1993. वाटर–ए वाइटल बट स्रिंकिंग रिसोर्स, ***इनवीरॉन*** 15: 2–4.

जॉन एस. 1986. प्रॉपर यूज आफ अमेरिकन नेचुरल कोगुलेन्ट्स फार रूरल वाटर सप्लाई इस्काबार्न जर्मन एजेन्सी फार ऐक्निकल को–आपरेशन.

मिश्र पी. के. एवं पाठक एस. के. 1995. रिमूवल आफ कॉलीफार्म बैक्टीरिया बाई मोरिन्गा सीड्स, कन्फेन्स आफ वाटर इन्जीनियरिंग एन्ड डेवेलपमेनट सेन्टर, ल्यूबर्ग यूनीवर्सिटी, यू. के.

श्राजेनद्रन, स. एवं सुन्दर राजन, के. एस. 1995. एफेक्ट आफ नीम आन सीवेज माईक्रोबस् इकोलॉजी, ***इन्वायरमेनट एण्ड कन्जरवेशन,*** 1–4: 133–134.

वारहर्स्ट,ए. एम. एवं मैक कोनाचीण् जी. एल. 1996. एप्लीकेशन आफ एक्टीवेटेड कार्बन प्राडुस फ्राम ***मोरिन्गा ओलिफेरा*** सीड हस्क बाइ सिंगल स्टेप स्टीम पाइरोलिसिस. ***वाटर रिसर्च*** 31: 759–766.

मूल शोधपत्र

शोधतरु 01(01): 24-28, 2015

उच्च गुणवत्ता वाली बाँस रोपण सामग्री हेतु प्रकन्द गुणन वाटिका

राम नारायण पाण्डेय* एवं पवन कु. कौशिक[1]

*स्वतंत्र परामर्शदाता एवं बाँस विशेषज्ञ, कुंजबन, अगरतला–799006

[1]क्षेत्रीय निदेशक, वन आधारित आजीविका एवम प्रसार केंद्र, अगरतला–7990012

सारांश

बाँस रोपण सामग्री तैयार करने की कई विधियाँ हैं। वर्तमान बाँस नर्सरी विधियाँ बीज, टिश्यू कल्चर कलम एवं प्रकन्द विधियों पर अत्याधिक निर्भर हैं। विभिन्न प्रचलित विधियों में बाँस प्रकन्द द्वारा बाँस की खेती सर्वाधिक सफल व लाभदायक है। इस विधि से बाँस की फसल कम समय में तैयार तो होती ही है, साथ ही बाँस की विशुद्ध प्रजाति और कैंडिडेट प्लस क्लम्प्स भी प्राप्त किये जा सकते हैं। बाँस प्रकन्द द्वारा बाँस प्रसार से जुड़ी कमियाँ इसके वृहद् पैमाने पर उपयोग में बाधक हैं। लेखक ने बाँस प्रकन्द द्वारा वृहद् पैमाने पर बाँस प्रसार करने हेतु बाँस प्रकन्द गुणन वाटिका की तकनीकी विकसित की है। ***थियोस्टिकास ओलेवेरी*** (कनक कैच) में किये एक वृहद् प्रयोग के आधार पर लगभग दो वर्ष उपरान्त प्रति हेक्टर बाँस प्रकन्द गुणन वाटिका से 30 हजार बाँस प्रकन्द प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी बाँस प्रकन्द गुणन वाटिका से 1 से 2 वर्ष आयु के पतले व लघु आकार के बाँस कलम भी प्राप्त होते हैं जिन्हें कलम बनाने के लिए प्रयोग में लिया जा सकता है। बाँस प्रकन्द गुणन वाटिका एवं बाँस रोपण साईट के निकट बनी नर्सरी ग्रामीण आजीविका का एक उत्तम साधन भी हैं। इस प्रकार विकसित बाँस रोपण सामग्री टिश्यू कल्चर द्वारा विकसित एवं पूर्णतः तैयार रोपण सामग्री से कम लागत में तैयार हो जाती है।

मुख्य शब्द : कैंडिडेट प्लस क्लम्पस, बाँस पोधशाला, बाँस रोपण, प्रकन्द गुणन

Rhizome multiplication garden for production of high quality bamboo planting material

Ram Narayan Pandey* and Pawan Kumar Kaushik[1],

*Independent consultant and Bamboo specialist, Kunjban, Agartala, Tripura

[1]Forest based livelihood and extension centre, Agartala, Tripura

Abstract

There are several procedures available for preparation of bamboo planting material. The modern bamboo nursery processes depend on seed, tissue culture, shoot cutting and rhizome. Of these, bamboo cultivation by rhizomes is the most successful and profitable. The process ensures not only bamboo crop in short time but also clones and candidate plus clumps. Bamboo propagation by rhizomes restrict for its large scale use. The authors developed a technique for bamboos rhizome multiplication garden for large scale propagation of bamboos. The multiplication garden can produce 30, 000 rhizome/ha in a period of two years and also micro shoots as bamboo cuttings of 1-2 year age. The bamboo rhizome multiplication garden and a nursery nearby bamboo cultivation site are the best bit for livelihood. The bamboo

** e-mail id : ram.fri80@gmail.com*

planting material produced from the multiplication garden is of low cost and economical in comparison to that obtained from tissue culture procedure.

Key Words: Candidate plus clumps, Bamboo nursery, Bamboo cultivation, Rhizome multiplication

Citation: Pandey R. N., Kaushik P. K. 2015. Rhizome multiplication garden for production of high quality bamboo planting material. *Shodhtaru* 1: 24-28.

प्रस्तावना

हाल के वर्षों में सरकार द्वारा प्रायोजित बाँस विकास कार्यक्रमों एवं बाँस आधारित उद्योगों की स्थापना के कारण उच्च–गुणवत्ता वाले बाँस की प्रमाणित रोपण सामग्री की मांग तेजी से बढ़ रही है। पर्याप्त मात्रा में बाँस पौध की अनुपलब्धता बाँस विकास के मार्ग में एक जटिल समस्या है। विशेषतः उन बाँस प्रजातियों के विकास के लिए जिनमें बीज बनते ही नहीं यह समस्या और भी विकराल है। इनबार (INBAR) द्वारा चिन्हित 20 अंतर्राष्ट्रीय महत्व के बाँस प्रजातियों में 6 कभी भी नहीं फूलने और अन्य लम्बे अंतराल पर फूलने वाले बाँस हैं (राव और साथी,1998)।

बाँस रोपण सामग्री तैयार करने की कई विधियाँ हैं जैसे बीज आधारित विधियाँ, कल्म कलम विधि, शाखा कलम विधि, एकल नोड विधि, लेयरिंग , मार्कोटिंग, ऊतक संवर्धन (टिश्यू कल्चर) एवं प्रकंदों द्वारा प्रवर्धन। प्रत्येक विधि के अपने लाभ हानि हैं। अतः एक संतुलित बाँस रोपण विधि की खोज अभी भी जारी है (बनिक, 1995)। जहाँ बाँस के बीजों की उपलब्धता अनिश्चित है वही इनकी व्यवहार्यता बहुत कम समय तक रहती है। कई बाँस प्रजातियों में तो कभी बीज बनते ही नही। बीजों से विकसित रोपण सामग्री में विविधता होती है अतः वृहद् स्तर पर खेती के लिए अनुपयोगी हैं। बाँस के बीजों की पहचान करना भी एक चुनौती है। इतना ही नहीं, बीजों से विकसित रोपण सामग्री को खेत में लगाने हेतु तैयार होने में एक वर्ष से भी अधिक समय लगता है वहीं इसे फसल प्राप्त होने में भी अधिक समय लगता है (बनिक, 2008)। उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए बाँस जैव प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। टिश्यू कल्चर विधि आज भी सभी बाँस प्रजातियों के लिए उपलब्ध नहीं है। इस विधि से तैयार पौधे न सिर्फ कीमती है बल्कि ये पौधे अतिसंवेदनशील भी होते हैं। बाँस रोपण से पूर्व इन्हें कम से कम एक वर्ष नर्सरी मैं रखना आवश्यक है जिससे इनका मूल्य और बढ़ जाता है अतः टिश्यू कल्चर पौधों का कई बाँस प्रजातियों में व्यावसायिक बाँस रोपण हेतु सीधे प्रयोग संभव नहीं हो पा रहा (पाण्डेय और साथी 2008)। बनिक (2008) के अनुसार विभिन्न बाँस प्रजातियों में जहाँ कलम बनाने की विभिन्न विधियां व्यावसायिक बाँसनर्सरी में मात्र 35–40% तक ही सफल होती हैं वही आदर्श परिस्थितियों में बाँस प्रकन्द द्वारा 80–90% तक सफलता प्राप्त हो सकी। इसीलिए बाँस रोपण की ये विधि ग्रामीणों ओर वनों में रहने वाले समुदायों द्वारा सर्वाधिक अनुकूल एवं प्रयोग्य है।

बाँस प्रकंदों द्वारा व्यापक बाँस खेती की संभावनाओं को देखते हुए कोशी और गोपा कुमार (2005) ने जहाँ ''ऑफ़सेट साइज़ रिडक्शन मेथड'' प्रस्तावित किया वहीं चन्द्रन (2008) ने ''बाँस प्रकन्द बैंक'' का सिद्धांत दिया। नेशनल बम्बू मिशन (NBM) द्वारा प्रकाशित मैन्युअल फॉर एस्टाब्लिश्मेंट एंड मैनेजमेंट ऑफ़ हाई–टेक बम्बू नर्सरी (एनॉन, 2014) में ''राइजोम /क्लोन बैंक '' का विवरण तो है किन्तु इस विधि की व्यावासिक व्यावहारिकता पर कोई जानकारी नहीं है। वर्तमान शोध पत्र ***थिरोस्टिकास ओलेवेरी*** के ''बाँस–प्रकन्द गुणन वाटिका'' के अनुभव पर प्रकाश डालते हुए अन्य बाँस प्रजातियों में इस विधि की उपयोगिता का आधार प्रस्तावित करने हेतु सृजित है।

सामग्री एवं विधि

सर्वप्रथम फरवरी मास में वाटिका हेतु वांछित भूमि को खर पतवार मुक्त कर 1मी. X 1मी. की दूरी पर 45 से.मी. X 45 से.मी. के गड्ढे किए जाने चाहिए। ***थिरोस्टिकास ओलेवेरी*** (कनक कैच) के 2 वर्ष पुराने

स्वस्थ क्लम्प्स का चयन कर उन्हें चिन्हित किया जाता है। 15 फरवरी से 30 मार्च के बीच 18 महीने के कल्म्स के निचले 30 से.मी. के टुकड़े (बाँस प्रकन्द) को संगृहीत कर क्लोरोपायरिफोस एवं बेवेस्तिन से शोधित किये जाते हैं। रोपण से पूर्व सर्व प्रथम गड्ढे में दीमक से बचाव के लिएफोरेट के दाने 10 ग्राम (एक चम्मच) प्रति गड्ढे की दर से डाल कर तत्पश्चात उपजाऊ उपरी मृदा में गोबर खाद, और रॉक फॉस्फेट मिलाकर गड्ढे को 3/4 ऊँचाई तक भर दिया जाता है। इसके बाद शोधित बांस प्रकंद 45 अंश तिरछी अवस्था में गड्ढों में रख उन के निचले 1 फुट हिस्से को पूर्णतया मृदा से ढक कर जल से सींच दिया जाता है।

परिणाम एवं विवेचना

त्रिपुरा की भौगोलिक परिस्थितियों में सिंचाई सामान्य वर्षा की स्थिति में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। इस विधि से 80–90% प्रकन्द वाटिका में स्थापित हो जाते हैं। 12 मास उपरान्त प्रत्येक स्थापित प्रकन्द में औसतन 3.2 बांस उग आते हैं। लगभग 18–20 मास में औसतन एक बाँसक्लम्प में कुल 8–10 बांस प्रकन्द एवं बांस उपलब्ध होते हैं। किन्तु इनकी निकासी का सर्वोचित समय 24 माह उपरांत अर्थात फरवरी–मार्च के माह में आता है। जब प्रति क्लम्प औसतन 3–4 बांस एवं प्रकन्द निकाले जाते हैं। इन प्रकंदो को शोधित कर रोपण स्थान के निकट एक पाली बैग नर्सरी में जमाव और जड़ बनने हेतु स्थापित किया जाता है। मई–जून मास में इन्हें आदर्श परिस्थितियों की मौजूदगी में वाणिज्यिक बागानों में रोपित कर दिया जाता है। इस प्रकार रोपण पश्चात 90% सफलता प्राप्त की जा सकती है।

त्रिपुरा में कनक कैच बांस के लिए विकसित एवं प्रयुक्त यह विधि अपने आप में अनूठी है। यह विधि एक कार्रवाई आधारित अनुसंधान का परिणाम है। इस से पूर्व इस विधि पर सिस्टम दृष्टिकोण के साथ बड़े पैमाने पर कोई भी साक्ष्य शोध साहित्य में नहीं है। 24 अप्रैल 2014 को द हिन्दू में प्रकाशित लेख इस बात की पुष्टि करता है कि कनक कैच बाँस की त्रिपुरा में सफलता का मूल कारण निरन्तर शोध और प्रक्रिया सुधार ही है।

बाँस प्रकंदों द्वारा व्यापक बाँस खेती की संभावनाओं को देखते हुए कोशी और गोपा कुमार (2005) ने छोटे स्तर पर (114 पौधे) ***बंबुसा वल्गॅयरिस*** पर शोध कर ***''ऑफ्सेट साइज़ रिडक्शन मेथड''*** प्रस्तावित किया। इस विधि में उन्होंने बड़े आकर के पॉट्स का प्रयोग कर बाँस प्रकंदो का गुणन किया। बारम्बार गुणन से नवीन प्रकन्द छोटे और पतले होते गए और अंतत उन्हें 13 X 19 से मी की पाली बैग में स्थापित किया। चन्द्रन (2008) ने ''बाँस प्रकन्द बैंक'' का सिद्धांत प्रस्तावित करते हुए 8 बाँस प्रजातियों के विभिन्न आकर के ''बाँस प्रकन्द बैंक'' उत्तराखंड में स्थापित करने की जानकारी दी। नेशनल बम्बू मिशन द्वारा प्रकाशित मैन्युअल फॉर एस्टाब्लिशमेंट एंड मैनेजमेंट ऑफ़ हाई–टेक बम्बू नर्सरी (एनॉन 2014) में ''राइजोम /क्लोन बैंक '' का विवरण है किन्तु पौधों की आपसी दूरी 5 मी X 5 मी है एवं इस विधि की व्यावसायिक व्यावहारिकता पर कोई जानकारी नहीं है। उपरोक्त सभी प्रयास सराहनीय हैं किन्तु नर्सरी एवं गुणन वाटिकाओं का मूल उद्देश्य मैदान में सफलता और कृषकों का लाभ होता है। अतः सिस्टम एप्रोच धारण कर संपूर्ण सप्लाई चैन को ध्यान में रखते हुए तकनीक का विकास होना चाहिए।

''बाँस प्रकन्द गुणन वाटिका'' का आधार

बाँस प्रकंदों द्वारा व्यापक पैमाने पर बाँस खेती के प्रसार में कई कठिनाई है। स्रोत क्लम्प्स से बाँस प्रकंदो की निकासी एक जटिल प्रक्रिया है। प्रकंदो की आपूर्ति समय व स्थान में विस्तृत रूप से फैली है वर्तमान बाँस वृक्षारोपण घनत्व को देखते हुए बड़ी मात्रा में प्रकंदो का संग्रहण संभव नहीं है। विभिन्न स्थानों से एवं विभिन्न स्रोतों से प्राप्त बाँस क्लम्प्स की आयु एवं गुणवत्ता की जानकारी का आभाव इस विधि के व्यापक प्रयोग में बाधक है। साथ ही व्यावसायिक बाँस की वांछित आयु जहां 4–5 वर्ष होती है वही गुणन के लिए बाँस प्रकंदो की वांछित आयु मात्र 1–2 वर्ष होती है। अतः एक ही समय में इन दोनो उपयोगो के लिए बाँस काटा नहीं जा सकता।

जहाँ एक ओर प्रकन्द निकासी का उचित समय फरवरी–मार्च है वहीं प्रकन्द लगाये जाने का सर्वोचित समय मानसून के आगमन के बाद मई–जून के महीने में है। इस प्रकार फरवरी से जून माह तक बाँस प्रकंदो का स्रोत क्लम्प्स से एकत्रीकरण एवं खेत में रोपण चलता है जो की प्रकंदों द्वारा स्थापित बाँस बागानों की असफलता का एक मूल कारण है क्योंकि स्रोत क्लम्प्स (संकुल) से अलग होने पर कल्म्स(नाल) की व्यवहार्यता सीमित समय तक ही रहती है। बाँस वृक्षारोपण हेतु साईट तैयार न होने पर अथवा मानसून में देरी होने पर प्रकन्द को अस्थाई रूप से संग्रहीत करना आवश्यक है।

बाँस प्रकंद दीमक हमले के लिए सुग्राही होते हैं अतः खेती हेतु इन्हें प्रयोग में लेते समय दीमक एवं कवक द्वारा नुक्सान से बचाने हेतु इनका सुरक्षात्मक रसायनों द्वारा पूर्वोपचार अति आवश्यक है। साथ ही बाँस प्रकंद की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए आपूर्ति की ट्रैकिंग करना आवश्यक है जो की सामान्य परिस्थिति में संभव नहीं है। खुली जड़ों वाले इन बाँस प्रकंदो को परिवहन के दौरान क्षति अनुपयोगी बना देती है।

बाँस प्रकंदो द्वारा बाँस वृक्षारोपण में आने वाली समस्याओं से निजात पाने के लिए बाँस ''बाँस प्रकन्द गुणन वाटिका'' एक अचूक साधन है क्योंकि एक ही स्थान पर सघन रोपित बाँस वृक्ष प्रचुर मात्रा में प्रकंद उपलब्ध करा सकते हैं। धारदार सब्बल एवं विशिष्ट टूलों द्वारा बाँस प्रकंदो को सुप्रशिक्षित कार्मिकों द्वारा निकला जा सकता है। निकासोपरांत चोटिल / रोगी प्रकन्द बाँस प्रसार प्रक्रिया से बाहर किये जा सकते हैं।

बाँस ''प्रकन्द गुणन वाटिका'' में स्थापित स्रोत क्लम्प्स की आयु ज्ञात होती है। किसी भी परिस्थिति में प्रजाति की पूर्ण आयु से आधी उम्र तक ही प्रकन्द निकले जा सकते हैं, तत्पश्चात बाँस ''प्रकन्द गुणन वाटिका'' में बाँस प्रजातियों का घनत्व कम कर उसे एक बाँस के एक खेत में परिवर्तित कर दिया जाता है। ऐसी व्यवस्था से प्राप्त प्रकंदो की आयु 1–2 वर्ष तय कर दी जाती है जो की बाँस प्रकंदो की सफलता हेतु वांछित है। किन्तु इस आयु के बाँस जो इस प्रक्रिया में निकाल लिए जाते हैं बेकार नहीं होते अपितु उन्हें कल्म कटिंग हेतु या टोकरी बनाने हेतु प्रयोग में लिया जा सकता है।

स्रोत क्लम्प्स से अलग किये जाने पर व्यवहार्यता बरक़रार रहने तक इन प्रकंदो को बाँस रोपण की जगह के निकट एक नर्सरी में पहुंचा दिया जाता है। यह प्रकन्द आकार में सीमित होते हैं अतः नर्सरी में इन्हें कवक एवं दीमक रोधी रसायनों से उपचारित कर इनके आकार के अनुसार उपजाऊ मृदा से भरे पाली बैग में लगा दिया जाता है। इस प्रकार नर्सरी में ही बाँस प्रकंदो का जमाव सुनिश्चित हो जाता है मानसून में देरी अथवा रोपण स्थल तैयार न होने की समस्या से प्रकन्द सुरक्षित रहते हैं। पाली बैग में स्थापित ये पूर्व अंकुरित एवं पूर्व जड़ युक्त पौधे वृक्षारोपण के पश्चात जल्द स्थापित हो तेजी से बढ़ते हैं। इस प्रकार की नर्सरी प्रायः 3–4 माह तक ही आवश्यक है। इन पौधों से पहले ही वर्ष में 3–5 बाँस निकल आते हैं। पाली बैग में स्थापित ये पूर्व अंकुरित एवं पूर्व जड़ युक्त पौधों के प्रयोग में कृषक को प्रकंद के पूर्व उपचार की आवश्यकता नहीं होती। प्रकंद आपूर्ति सहज और गुणवत्ता सुनिश्चित हो जाती है साथ ही आपूर्ति की ट्रैकिंग करना संभव हो जाता है।

आभार

लेखक द्वय, मिशन डायरेक्टर, त्रिपुरा बाँस मिशन, अगरतला; डीएम एवं कलेक्टर, पश्चिम त्रिपुरा जिला, ग्रामीण विकास विभाग, त्रिपुरा सरकार को; सादर आभार व्यक्त करते हैं; जिन्होंने महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारेंटी अधिनियम के तहत निजी किसानों की भूमि पर बाँस की खेती प्रायोजित करने में अभूतपूर्व योगदान दिया साथ ही साथ, उन सभी पंचायत समितियों एवं किसानो को भी धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिन्होंने बाँस की खेती को यथार्थ करने में सहयोग दिया।

संदर्भ

राव ए, एन., रमानाथ राव, वी. एवं विलियम्स, जे. टी. (एडी.) 1998. प्रायोरिटी स्पीशीज ऑफ़ बैम्बू एंड रत्तन, आई.पी.जी.आर.आई. एंड आई.एन.बा.आर , आई.पी.जी.आर.आई.–ए, पी. ओ., सेरदंग, मलेशिया, 9.

बनिक रतन लाल.1995 . ए मैन्युअल फॉर वेजेटेटीव प्रोपेगेशन ऑफ़ बैम्बू एंड रत्तन, आई.एन.बा.आर. टेक्निकल रिपोर्ट न . 6, आई.एन.बा.आर., फोर्तिप एवं बांग्लादेश फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट, 1–66.

बनिक रतन लाल. 2008. इशूस इन प्रोडक्शन ऑफ़ बैम्बू प्लांटिंग मैटेरियल्स– लेसंस एंड स्ट्रेटेजीज. ***इंडियन फोरेस्टर***, 134:– 291–304.

पाण्डेय आर.एन., आर्या एस., कान्त, ए., आर्या, आई.डी. 2010. कमर्शियल माइक्रोप्रोपेगेशन ऑफ़ बेम्बूस : ए केस स्टडी. नेशनल सेमिनार ऑन बैम्बू प्लान्टेशन, मैनेजमेंट एंड यूटिलाईजेशन (एडी.)आर्या, आई.डी., राठौर, टी.एस., आर्या, सरिता., कान्त, तरुण. एरिड फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट, जोधपुर, इंडिया. 31–50.

कोशी, के.सी., गोपाकुमार, बी. 2005. एन इम्प्रोवाईसड वेजिटेतिव टेकनिक फॉर सेल्फ इन्कम्पेटबेल बैम्बूस. ***करंट साइंस.*** 89: 1474–1476.

चंद्रन, एम्. 2008. डेवलपमेंट ऑफ़ राइजोम बैंक्स फॉर बैम्बू मल्टीप्लिकेशन. ***इंडियन फौरेस्टर***, 134: 445–447 .

एनन. 2014. मैन्युअल फॉर एस्टाब्लिशमेंट एंड मैनेजमेंट ऑफ़ हाई टेक बम्बू नर्सरीस. नेशनल बैम्बू मिशन.

प्रभु, एम.जे. 2014. कनक कैच बैम्बू कल्टीवेशन हेल्प्स स्माल फार्मर्स. फार्मर्स नोट बुक, द हिन्दू. 2024 अप्रैल 2014.

लघु संवाद

शोधतरु 01(01): 29-32, 2015

झारखंड के कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पादपों का तना कलम विधि द्वारा प्रवर्धन

रवि शंकर प्रसाद* और मालविका रे[1]

*वन कार्यकी एवं आण्विक जीवविज्ञान प्रभाग

[1]वन पारिस्थितिकी एवं भूमि प्रबंधन प्रभाग

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में चार प्रजाति के महत्वपूर्ण औषधीय पौधों– ***पोगोस्टेमोन केबलिन*** (पचौली), ***जिमनेमा सिल्वेस्टर*** (गुडमार), ***एकलिपटा एल्बा*** (भृंगराज), ***सौरोप्स एंडरोगायनस*** (मल्टीविटामिन) की तना कलम द्वारा कायिक प्रवर्धन का वर्णन किया गया है। इस अध्ययन में पाया गया कि औषधीय पादपों की सभी प्रजातियों में मूल का निर्माण तो सभी प्रकार के (नियंत्रण, IAA, IBA, NAA) उपचार में पाया गया, परंतु आई. बी. ए. के घोल से उपचारित कलम में मूलों की संख्या, उसकी लंबाई तथा उसका प्रतिशत सबसे अधिक प्राप्त हुआ। इस प्रयोग से प्राप्त आकड़ों के आधार पर कह सकते है कि औषधीय पादपों के अपस्थानिक मूल विकास के लिए आई. बी. ए. 500 पी.पी.एम. उत्तम हार्मोन उपचार है।

मुख्य शब्द: आर्युवैदिक, औषधीय, अपस्थानिक जड़, पर्णपाती, मूल निर्माण, हार्मोन उपचार

Vegetative propagation through shoot cuttings of some important medicinal plants of Jharkhand

Ravi S. Prasad*, Malabika Ray[1]

*Forest Physiology and Molecular Biology Division

[1]Forest Ecology and Land Management Division

Abstract

The present research communication describes vegetative propagation through shoot cuttings of four species of medicinal plants: *Pogostemon cablin* (Pachauli), *Gymnema sylvestre* (Gurmar), *Eclipta alba* (Bhringraj) and *Sourops androgynus* (Multivitamin). All treatments (control, IAA, IBA, NAA) produced adventitious roots but IBA had the highest root number and length per cutting and rooting percentage. The data obtained from the experiment recommended 500 ppm IBA as the best treatment for adventitious root development in medicinal plants.

Key Words: Ayurvedic, Medicinal, Adventitious roots, Deciduous, Root formation, Hormone treatment

Citation: Prasad R. S., Ray M. 2015. Vegetative propagation through shoot cuttings of some important medicinal plants of Jharkhand. *Shodhtaru* 1: 29-32.

प्रस्तावना

विश्व स्वास्थ संगठन के अनुसार विश्व की 80 % जनसंख्या आज भी अपने प्राथमिक उपचार के लिए पारंपरिक तरीको पर निर्भर रहती है। आज पूरे विश्व में औषधीय पौधों की 1170 प्रजाति और 560 से ज्यादा

* *e-mail id : prasadrs@icfre.org*

जीनस का उपयोग आर्थिक महत्व की औषधीय पोधों के उत्पादन किया जाता है। यह केवल विकासशील देशों तक ही सीमित नहीं है पश्चिमी देशों में भी दवा कंपनियों का 40% से ज्यादा कच्चा माल औषधीय पौधों से ही प्राप्त होता है। भारत में विभिन्न पारंपरिक चिकित्सा पद्धति द्वारा उपचार की परंपरा रही है। उसमे आर्युवैदिक, यूनानी, होमिओपैथिक तथा सिद्धा प्रमुख है। इन सारे पद्धति में इलाज़ के लिए औषधीय पौधों का ही उपयोग किया जाता है। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में भी इसके बारे में वर्णन है। चरक संहिता में लगभग 600 और सुश्रुत संहिता में लगभग 650 दवाओं का उल्लेख है।

माना जाता है कि आज भी भारत की 80% जनसंख्या अपने प्राथमिक स्वास्थ के लिए औषधीय पौधों पर ही निर्भर करती है। एक अनुमान के अनुसार भारत प्रति वर्ष 36 करोड़ रुपए मूल्य का कच्चा माल और दवा निर्यात करती है जिससे भारत को अच्छी आय प्राप्त होती है। भारत में लगभग 45000 पौधों की प्रजातियां विभिन्न क्षेत्रों जैसे हिमालय, पश्चिमीघाट, अंडमान निकोबार द्वीपसमूह, दक्षिण भाग, पश्चिम बंगाल, झारखंड, उत्तरपूर्व जैसे क्षेत्रों में पायी जाती है। झारखंड प्रदेश भी औषधीय पौधों के लिए जाना जाता है जिनमें हजारीबाग, खूंटी, गुमला, लोहरदगा, चतरा, चँदवा, लातेहार, नेतरहट, बेतला, हजारीबाग, पारसनाथ, रांची, कोडरमा, बरही, राजौली प्रमुख हैं। यहाँ की जलवायु औषधि पौधो के लिए उपयुक्त है। यहाँ के जंगलो में पाई जाने वाली ज्यादातर प्रजाति पर्णपाती स्वभाव के होते है (हैन्स, 1925)।

वन उत्पादकता संस्थान, रांची में विरल और संकटग्रस्त शकीय, झाड़ीनुमा और वृक्षों का संरक्षण किया गया है। साथ ही साथ इनकी संख्या को भी बढ़ाने का निरंतर प्रयत्न किया जा रहा है। इसी क्रम में प्रस्तुत शोध पत्र में चार प्रजाति के महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की तना कलम द्वारा कायिक प्रवर्धन का वर्णन किया गया है।

सामग्री एवं विधि

इस प्रयोग का अध्ययन क्षेत्र वन उत्पादकता संस्थान, औस उपवन, राँची में स्थित है निदेशांक $23^0$34'40" उत्तरी अक्षांश $85^0$30'95" पूर्वी देशान्तर है। इस क्षेत्र का औसत तापमान अधिकतम व न्यूनतम क्रमश 34.55^0 से० तथा 18.58^0 से० है। हार्मोन उपचार हेतु चार प्रजाति ***पोगोस्टेमोन केबलिन*** (पचौली), ***जिमनेमा सिल्वेस्टर*** (गुडमार), ***एकलिपटा एल्बा*** (भृंगराज), ***सौरोप्स एंडरोगायनस*** (मल्टीविटामिन) के पौधों का चुनाव किया गया ताकि उसके द्वारा तैयार पौधे रोगमुक्त तथा उन्नत किस्म के हो। इसके बाद कलमें तैयार की जिसकी लंबाई 4 से 6 इंच रखी गई। यह भी सुनिश्चित किया की कलम में कम से कम 2 से 3 गांठ मौजूद हो। उसके बाद उन कलमों में से पत्तियों छटनी कर देते हैं ताकि पोषक तत्वों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग मूल निर्माण में हो सके। तत्पश्चात कलम को 1–2 ग्राम / लीटर वेबिस्टीन के घोल में उपचारित करते हैं। इस घोल में कलम को पूरी तरह से डुबो कर 5 से 10 मिनट के लिए छोड़ देते हैं। इसके बाद इसे 500 पीपीएम (ppm) के विभिन्न ऑक्सिन जैसे इंडोल एसेटिक अम्ल(IAA), इंडोल बूटेरिक अम्ल (IBA) और नेपथलीन एसेटिक अम्ल (NAA) में 2 मिनट के लिए डुबो कर रखते हैं साथ ही साथ नियंत्रण भी लगाते हैं। उसे धुंधकक्ष में हायकोपॉट में उपचारित मीडिया में रोपित करते हैं। समय समय पर धुंधकक्ष में स्प्रिंकलर विधि द्वारा पानी की सिंचाई की जाती है। 45 दिनों के बाद प्रत्येक प्रजाति के जड़ के लंबाई जड़ों की संख्या और उनका प्रतिशत का आंकलन किया। प्राप्त आकड़ों को सारणी– 1 तथा चित्र– 1 के माध्यम से दर्शाया गया है।

परिणाम और विवेचना

कलमों में मूल उत्पति एवं विकास कई कारणों पर निर्भर करता है। इनमे हार्मोन एवं उनकी सान्द्रता विशेष महत्वपूर्ण है (हार्टमेन एवं साथी, 1997)। इंडोल बूटेरिक अम्ल, इंडोल एसेटिक अम्ल एवं नेफ्थलीन एसेटिक अम्ल में से प्रथम की प्रेरण क्षमता विभिन्न प्रजातियों में अधिकतम पाई गई (लीकी,1992, सिंह एवं अंसारी, 2014)।

सारणी 1. विभिन्न उपचार में मूलों की संख्या और मूलों की अधिकतम लंबाई

क्रम सं.	प्रजाति	नियंत्रण		आई. ए. ए.		एन.ए.ए.		आई. बी. ए.	
		मूल संख्या	मूल लंबाई (सेमी)	मूल संख्या	मूल लंबाई (सेमी)	मूल संख्या	मूल लंबाई (सेमी)	मूल संख्या	मूल लंबाई (सेमी)
1	***पोगोस्टेमोन केबलिन*** (पचौली)	18	10	20	15	17	9	30	21
2	***जिमनेमा सिल्वेस्टर*** (गुडमार)	9	7	10	11	14	4	24	12
3	***एकलिपटा एल्बा*** (भृंगराज)	13	10	15	13	13	9	18	15
4	***सौरोप्स एंडरोगायनस*** (मल्टीविटामिन)	13	20	15	18	14	19	17	32

इस अध्ययन में पाया गया कि औषधीय पादपों की सभी प्रजातियों में मूल का निर्माण तो सभी प्रकार के उपचार में पाया गया, परंतु आई बी ए (IBA) के घोल से उपचारित कलम में मूलों की संख्या, उसकी लंबाई तथा उसका प्रतिशत सबसे अधिक प्राप्त हुआ। इस प्रयोग से प्राप्त आकड़ों के आधार पर कह सकते हैं कि औषधीय पादपों के मूल विकास के लिए IBA 500 ppm उत्तम हार्मोन उपचार है। विभिन्न औषधीय प्रजातियों में मूल उत्पति में भिन्नता पाई गई (चित्र 1)।

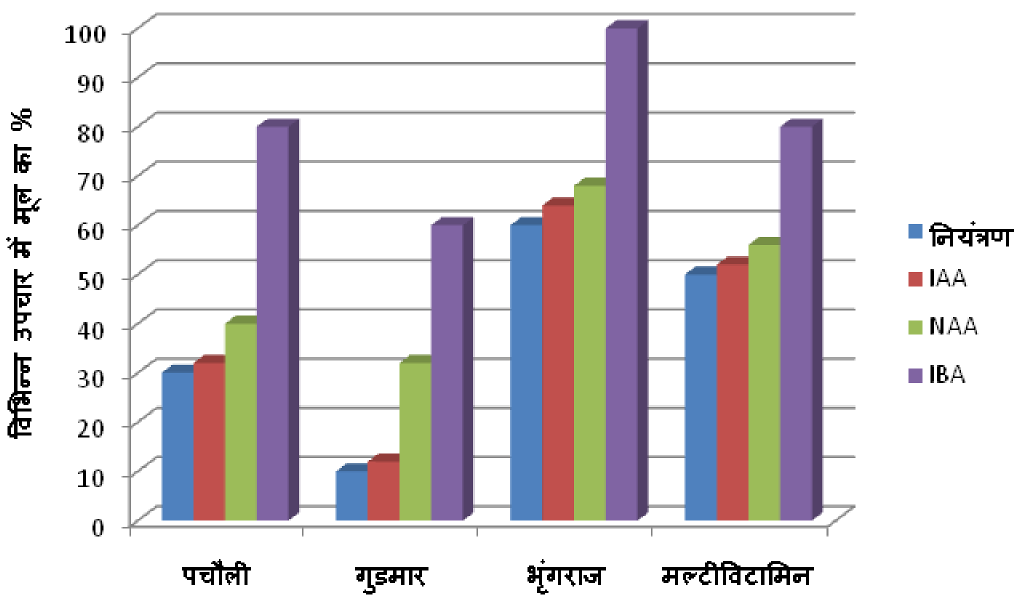

चित्र 1. विभिन्न हार्मोन उपचार में मूलों का प्रतिशत

विभिन्न हारमोन के उपचार में सबसे कम मूलों का प्रतिशत आई.ए.ए., उसके बाद एन.ए.ए. और सबसे अधिक मूलों का प्रतिशत आई.बी.ए. में पाया गया। इन चारो प्रजातियों में सबसे कम मूलों का प्रतिशत गुरमार में और सबसे अधिक भृंगराज में पाया गया। निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि इन चार औषधीय प्रजातियों का कायिक प्रवर्धन कलम पद्धति से सरलता से संभव है तथा आई.बी.ए. का उपचार अन्य ऑक्सिन हारमोन की तुलना में सफलता सुनिश्चित करता है।

संदर्भ

हैन्स एच. एच. 1921—1925. पब्लिश बॉटनी ऑफ बिहार एंड ओड़ीशा वॉल्यूम 1—6.

हार्टमन एच.टी., केस्टर दी. ई., डेविस एफ.टी.जूनियर एवं जैनेक एल.आर. 1997. प्लांट प्रोपेगेशनः प्रिंसिपल्स एंड प्रेक्टिसेस (6 वाँ एडिसन), प्रेंटिस हाल इंटरनेशनल न्यू जर्सी, संयुक्त राज्य अमेरिका, 880.

लीकी आर. आर. बी. 1992. स्टाक प्लांट्स फैक्टर्स एफक्टिंग रूट इनिशिएशन इन कटिंग्स ऑफ ***त्रिप्लोकिटन स्केलेरेज्यलोन*** के.शुम.एन, इंडिजिनस हार्डवूड ऑफ वेस्ट अफ्रीका. ***जनरल ऑफ हौर्टिकल्चरल साइन्स,*** 58:257—280.

सिंह एस. एवं अंसारी एस.ए. 2014. मास मल्टीप्लीकेशन ऑफ मैच्योर ट्री ऑफ ***मेलिना आरबौरिया*** रौक्स थ्रु एक्स वीट्रो रूटिंग ऑफ रीजुवीनेटेड बर्ड स्प्रौट्स. ***रिसर्च जेनरल ऑफ फोरेस्ट्री.*** 8: 25—31.

लेखकों के लिए दिशा निर्देश

उद्देश्य

वन उत्पादकता संस्थान (भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद) द्वारा प्रकाशित इस अर्धवार्षिक पत्रिका का लक्ष्य वानिकी के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे शोध का प्रसार हिन्दी में करना है। इस पत्रिका में वानिकी से संबन्धित सभी विषय जैसे वन जैवप्रोद्योगिकी, वन रसायन, वन वनस्पति, वनकाष्ठ और उत्पादकता, अकाष्ठ वन उत्पाद और उपयोगिता, वन पारिस्थिकी, वन संरक्षण, वन पादपरोग आदि की विभिन्न शाखाएं भी शामिल है। यह पत्रिका वन विज्ञान मे हो रहे निरंतर शोधों को सरल रूप में प्रस्तुत करने का एक प्रयास है। यह पत्रिका नवोदित मूल शोध पत्रों और समीक्षा पत्रों को प्रकाशन हेतु आमंत्रित करता है।

पत्रिका में शोध पत्र एवं समीक्षा पत्र लिखने का प्रारूप

इस पत्रिका में उन्ही शोध पत्रों को स्वीकारा जाएगा जो कि प्रारूप के अनुसार लिखे गए होंगे। प्रारूप का क्रमानुसार विवरण निम्नलिखित हैं।

1. शीर्षक (हिन्दी एवं अँग्रेजी)
2. सारांश (हिन्दी एवं अँग्रेजी)
3. मुख्य शब्द (हिन्दी एवं अँग्रेजी)
4. प्रस्तावना
5. सामाग्री एवं विधि
6. परिणाम एवं विवेचना
7. निष्कर्ष
8. आभार (यदि कोई)
9. संदर्भ

सभी लेखकों से निवेदन है कि शोध पत्र और समीक्षा पत्र माइक्रोसॉफ़्ट वर्ड में हिन्दी भाषा के केवल मंगल लिपि (अक्षर आकार 12) या यूनिकोड या कुरतिदेव में ही भेजें। प्रकाशनार्थ भेजे गए लेख कहीं अन्यत्र नहीं छपे होने चाहिए या अन्यत्र प्रकाशित लेखों का अनुवादित रूप नहीं होना चाहिए। सभी पत्राचार के लिए vspeditor@gmail.com या sanjaysingh@icfre.org का ही प्रयोग करें। अंकों के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप 1, 2, 3....... आदि का ही इस्तेमाल करें। सभी चित्र उच्च गुणवत्ता, संभवतः 300 डीपीआई के होने चाहिए और चित्रों को उचित अंक (जैसे, चित्र–1 सहजन की फली) दें साथ ही साथ चित्रों को अलग पेज में भेजें। लेख में सारणियों (जैसे, सारणी–1 करंज के बीज में तेल की मात्रा) का उल्लेख उचित स्थान पर करें और सभी सारणियों को अलग पृष्ठ में भेजें। यूनिटों को लिखने हेतु उनके अंतर्राष्ट्रीय मान्य स्वरूप (जैसे, α, β, γ, cm, ml, kg आदि) का ही प्रयोग करें।

1. **शीर्षक– (हिन्दी एवं अँग्रेजी दोनों में)** शीर्षक संक्षिप्त एवं शोध पत्र की विषय सामाग्री को

प्रस्तुत करने वाला होना चाहिए। सभी पौधों के वैज्ञानिक नाम इटेलिक (italic) में होने चाहिए। शीर्षक के अक्षर का आकार 14 होना चाहिए।

2. **लेखकों के नाम और संबद्धता– (हिन्दी एवं अँग्रेजी दोनों में)** लेखकों के नाम का क्रम – पहला नाम, मध्य नाम और अधिनाम. सभी लेखकों के संबद्धता संबंधित ब्योरा जैसे विभाग, विश्वविध्यालय या संस्थान, शहर, राज्य और देश का उल्लेख करें। किसी एक लेखक के नाम को पत्राचार लेखक के रूप में (*) इंगित करना तथा उसका/उसकी ई–मेल (email) जानकारी देना अनिवार्य है।

3. **सारांश और मुख्य शब्द– (हिन्दी एवं अँग्रेजी दोनों में)** सारांश पत्र के परिचय को प्रस्तुत करने वाला और 300 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए। यह पत्र में उपयुक्त विधि और महत्वपूर्ण परिणाम को उल्लेख करने वाला होना चाहिए। किसी भी प्रकार के संदर्भ और संक्षिप्त शब्दों को इस भाग में न लिखें। लेखकों से अनुरोध है कि वह 4–5 मुख्य शब्द (keyword) अवश्य लिखें।

4. **प्रस्तावना**– इसमें शोध पत्र के संबंध मे महत्वपूर्ण एवं संक्षिप्त जानकारी होनी चाहिए। यह बहुत अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए।

5. **सामाग्री एवं विधि**– प्रयोग की गई विधि का सम्पूर्ण विवरण (जैसे स्वविधि या स्रोत से ली गई विधि संदर्भ सहित) इस प्रकार दें कि कोई अन्य शोधकर्ता चाहे तो वह इसका प्रयोग अपने अनुसंधान में कर सके।

6. **परिणाम एवं विवेचना**– शोध पत्र से संबंधित परिणामों को दिया जाना चाहिए। परिणाम में आँकड़ों को सारणी या चित्रों या ग्राफ के रूप में लिखा जाना चाहिए तथा उनका यथासंभव शीर्षक दें। विवेचना शोध के परिणामों के आधार पर होनी चाहिए। विवेचना में केवल शोध से प्राप्त नवीनतम जानकारी की ही व्याख्या करें।

7. **निष्कर्ष**– शोध से प्राप्त जानकारी पर आधारित निष्कर्ष होना चाहिए साथ ही साथ भविष्य में इस शोध से क्या प्राप्त होगा इसका उल्लेख भी करें।

8. **आभार** – आभार छोटा एवं शोध में सहायता करने वालों का ही नाम होना चाहिए।

9. **संदर्भ**– संदर्भ सही और पूरे होने चाहिए। पत्र में संदर्भ का नाम (कुमार, 1999, रावत और साथी, 2004) लिखा होना चाहिए। संदर्भ में लेखक का उपनाम और फिर नाम या प्रथम अक्षर लिखें, वर्ष, शीर्षक, जरनल का पूरा मौलिक नाम हिन्दी में, वॉल्यूम न. और पृष्ठ संख्या लिखें जैसे – मिश्रा. एस. 2011. न्यूट्रीसनल एंड मेडिसिनल वैल्यू ऑफ ***मोरिंगा ओलिफेरा***ः पोटेन्सियल एंड प्रोस्पेक्ट. ***इनविस फोरेस्टरी बुलेटीन***, 11ः 46–58. पुस्तक के नाम के लिए, लेखक का नाम, प्रकशन वर्ष, पुस्तक का पूरा नाम, प्रकाशक व शहर तथा पृष्ठ संख्या दी जानी चाहिए। जैसे– चन्दर जे. 2013. असेस्मेंट एंड कंसरवेशन ऑफ फॉरेस्ट जेनेटिक रिसोर्सेस (संपादक : संजय सिंह और रामेश्वर दास). नेक्स्ट प्रिंट पब्लिशर्स, राँची, 31–38.

10. **समीक्षा पत्र**– समीक्षा पत्र में किसी विषय वस्तु में हुए विकास को प्रस्तुत करते हैं तथा उस विकास का वानिकी के क्षेत्रों में होने वाले प्रभावों की भी व्याख्या करते हैं। समीक्षा पत्र में लेखक के गहन अध्ययन, उसके विचार और विषय अधिकार की दर्शन क्षमता का बोध होना चाहिए।

अतः ऐसे समीक्षा पत्रों में गत 8–10 वर्षों में सामयिक विषयों की विवेचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें। संदर्भों का पूर्ण विवरण दें (संख्या 100–150 से अधिक न रखें)।

सर्वप्रथम प्राप्त लेखों की तकनीकी जांच होगी कोई कमी होने पर लेखकों को संपादक द्वारा पुनः सुधार के लिए वापस किया जाएगा। तत्पश्चात पत्रिका की गुणवत्ता को बनाएँ रखने हेतु प्राप्त सभी शोध लेखों व समीक्षा पत्रों का आंकलन विषय विशेषज्ञ (रेफरी) पैनल द्वारा किया जाएगा। स्वीकृत होने पर लेख को लेखक के पास अंतिम सुधार के लिए भेजा जाएगा।

चित्र : महानदी तट (सातकोशिया, ओड़िसा) पर *एनोगसिस एक्युमिनेटा* (फासी) का वृक्ष जिसका उपयोग पुरी की विश्व प्रसिद्ध जगन्नाथ रथ यात्रा में रथ के पहिए के निर्माण में होता है।

(आभार : डा. संजय सिंह, वैज्ञानिक ई, वन उत्पादकता संस्थान, रांची)

शोधतरु

शोधतरु लोगो– श्री जीशान दानिश

ISSN 2394 - 8744

शोधतरु

वानिकी शोध पत्रिका

वर्ष- 1 | अंक - 1 | मार्च 2015

विषय सूची

प्राक्कथन	v
संरक्षक की कलम से	vi
संपादकीय	viii
वन-सीमावर्ती क्षेत्रों में जन समुदाय के लिए कृषिवानिकी विकास- पवन कुमार कौशिक, प्रवीण वर्मा, शंकर वर्मा Development of agroforestry model in forest fringe areas for local communities- Pawan Kumar Kaushik, Praveen Verma, Shankar Sharma	1
जेट्रोफा कर्कस द्वारा कार्बन संग्रहण की क्षमता- आलोक पाण्डेय, कुमुद दूबे, प्रवीण त्रिपाठी Carbon sequestration capacity of *Jatropha curcas* Alok Pandey, Kumud Dubey, Praveen Tripathi	9
सुंदरबन बाघ संरक्षण क्षेत्र के प्रतिरोधक क्षेत्र में मुख्य वृक्ष जातियाँ- अनिमेष सिन्हा Important tree species in protected area of Sunderban Tiger Reserve- Animesh Sinha	14
वनस्पति जन्य प्राकृतिक जल शोध- पी. के. मिश्रा Natural water purification through plants- P. K. Mishra	20
उच्च गुणवता वाली बाँस रोपण सामग्री हेतु प्रकन्द गुणन वाटिका- राम नारायण पाण्डेय, पवन कुमार कौशिक Rhizome multiplication garden for production of high quality bamboo planting material- Ram Narayan Pandey and Pawan Kumar Kaushik	24
झारखण्ड के कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पादपो का तना कलम विधि द्वारा प्रवर्धन- रवि शंकर प्रसाद और मालविका रे Vegetative propagation through shoot cuttings of some important medicinal plants of Jharkhand- Ravi S. Prasad, Malabika Ray	29
लेखकों के लिए दिशा निर्देश Guide for Authors	33

वन उत्पादकता संस्थान
राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 23, लालगुटवा राँची (झारखंड)- 835303